हम क्यों रुकें ?

लेखक

श्री रमणलाल वसन्तलाल देसाई

रूपान्तरकार

श्री गणेशप्रसाद जैन

प्रकाशक

भारतीय प्रकाशन मण्डल

बनारस-१

प्रकाशक
रघुनाथ प्रसाद
भारतीय प्रकाशन मण्डल
नन्दनसाहू लेन, बनारस-१

प्रथम संस्करण
१५ अगस्त १९५०
मूल्य २॥)

मुद्रक
शारदा मुद्रण,
बनारस।

स्वागत

हिन्दी का कहानी-साहित्य जैसा फल फूल रहा है, उसे देखकर कौन गर्व का अनुभव न करेगा। नित्य नए लेखक आगे आते जा रहे हैं। इसी प्रकार एक नए कृति का स्वागत "हम क्यों रुकें ?" कहानी-संग्रह के अभिनन्दन द्वारा हम करते हैं।

प्रस्तुत कहानियाँ गुजराती के सुप्रसिद्ध कहानीकार श्री रमणलाल बसन्तलाल देसाई

की प्रसिद्ध कृतियों के अनुवाद हैं। अपनी राष्ट्रभाषा में सारा साहित्य उपलब्ध होना अत्यन्त आवश्यक है। दूसरी ओर यदि उर्दू-कृतियों को देवनागरी लिपि में सुलभ कर दिया जाय तो उसकी दुर्गमता दूर हो सकती है। श्री रमणलाल बसन्तलालजी देसाई की कहानियों के विषय में कुछ लिखने की आवश्यकता नहीं। हमारी भाषाओं के वे अग्रणी साहित्यकार हैं। इन पंक्तियों द्वारा हिन्दी जगत् की ओर से उनका स्वागत है।

काशी, (राय) कृष्णदास
१५ अगस्त, १९५०

मेरे 'मधु' !

तुम्हारी मिठास के कारण,

तुम्हें ही—

'गणेश'

श्री कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी

राजनीतिक क्षेत्रमें जिस तरह आप एक कुशल राजनीतिज्ञ हैं, उसी तरह साहित्यिक क्षेत्र में आप कुशल साहित्यिक भी हैं। गुजराती साहित्यिक क्षेत्र के लिए आप और श्री रमणलाल बसन्तलाल देसाई दो जगमगाते हीरे हैं। देशसेवा और देश-प्रेम से ओत-प्रोत आपकी रचनाओं में आपका उज्ज्वल व्यक्तित्व हर जगह स्पष्ट झलकता है। इन्हीं की ये रचनायें हैं। आप इन्हें अवश्य पढ़ें।

- ❀ अभिशाप ५)
- ❀ प्रतिशोध ५)
- ❀ स्वप्नद्रष्टा ५)
- ❀ अतीत के स्वप्न ४)
- ❀ परदे की आड़ में २)

भारतीय प्रकाशन मण्डल—बनारस-१

"...पुस्तक पढ़ जाने के अनन्तर हमारे हृदय एवं मस्तिष्क पर यह बात अंकित हो जाती है कि इस संघर्ष प्रधान वातावरण में वही सफल हो सकता है जो पराजय को विजय प्राप्तिका श्रीगणेश माने। असत्य एवं निम्नगामी प्रवृत्तियों की विजय होती हुई भले ही दृष्टिगत हो पर अन्ततोगत्वा सत्यकी विजय होना निश्चित है। श्री देसाई की ये कहानियाँ रोचक होनेके साथ ही मनोवैज्ञानिक भी हैं।...श्री गणेशप्रसाद जैन को अनुवाद में सफलता मिली है। ...हम इस ग्रन्थका स्वागत करते हैं।"

...आल इंडिया रेडियो, लखनऊ

पुष्प-हार

विवाह की भेंट	९
त्यक्ता	२४
विजय किसकी ?	४६
तृप्ति	६३
अमर-प्रेमी	७५
क्या वह पागल था ?	९१
ओस की बूँद	१०२
उत्तरदायित्व	११७
मान भंग	१३७
हम क्यों रुकें ?	१६०

विवाह की भेंट !

'सुरभि ! देखो तो, बाहर कौन घर पूछ रहा है ?'

प्रभाहीन तथा जीर्ण दिखलाई देती हुई घर की दालान में चारपाई पर सोयी हुई एक बीमार स्त्री ने क्षीण-स्वर में अपनी लड़की से यह प्रश्न किया।

सन्ध्या का समय था। सुरभि घर में दीपक जला रही थी। बाहरके चौगान में एक गाड़ी की खड़खड़ाहट हुई और साथही गाड़ीवान का कर्कश-स्वर सुनायी पड़ा—

'रामराय बाबू का घर यही है ?'

सुरभि और उसकी माता नीलमगौरी ने एक ही साथ यह प्रश्न सुना। गाड़ीवान नया मालूम होता है, नहीं तो रामराय बाबू का घर न पूछता। यह घर तो समूचे गाँव का जाना हुआ है !

सुरभि दीपक जला कर बाहर आयी। पूर्वस्मृति ने नीलमगौरी को दूसरे ही जगत में पहुँचा दिया था। वह निःश्वास छोड़ सोचने लगी—

दुनिया कितनी स्वार्थी है जो पाँच-सात वर्ष बीतते-ही-बीतते अपने लोगों को भूल जाती है। आज से सात वर्ष पहले की ही तो बात है जब रामराय एक कन्या छोड़ कर स्वर्गवासी हुए थे। अन्त समय तक उन्होंने गाँव की मुखियागिरी की थी। ग्रामवासियों के आपसी झगड़ों का

वे ही निराकरण करते थे, और उन्हीं के व्यक्तित्व के कारण गाँव की प्रतिष्ठा का इतना मान था कि गाँव का एक भी झगड़ा न्यायालय में नहीं जाता था। उनकी मृत्यु से समूचे गाँव पर शोक छा गया था।

परन्तु जीवित संसार मृत मनुष्य को जल्दी ही भूल जाता है। गाड़ीवान भी गाँव में या तो नया आया है या उस समय छोटा रहा होगा, जिससे उनके महत्व की उसे जानकारी नहीं है। रामराय के जीवन में अनेकों मेहमान उनके यहाँ आते थे। परन्तु दो-तीन वर्षों से भाग्य से ही कोई उनके घर आया हो।

सुरभि ने बाहर चौतरे पर आकर कहा—'हाँ, यही घर है। क्यों, क्या काम है?'

'ये बाबूसाहब आपके यहाँ आये हैं।' गाड़ीवान ने उसी भारी आवाज में कहा।

सायंकाल के धुँधले अन्धकार में सुरभि ने देखा कि गाड़ी से एक हृष्ट-पुष्ट सुन्दर युवक हाथ में चमड़े का बेग लिए उतरा। उसके साथ एक नौकर भी गाड़ी से उतरा।

सुरभि उस युवक को पहिचान न सकी। युवक सुरभि को नमस्कार कर चबूतरे पर चढ़ आया।

सुरभि ने अन्दर आने का रास्ता दिखलाते हुए कहा—

'आइये!'

दालान में से नीलमगौरी ने पूछा—

'कौन आया है बेटी?'

सुरभि असमञ्जस में पड़ गयी। उत्तर देने के बदले वह युवक की ओर देखने लगी। उसका तात्पर्य समझ युवक बोला—

'नीलम चाची! मैं हूं—रश्मि।'

'अरे, तू! आ...आ...इधर आ बेटा!'

चाचीके पाँव छूकर रश्मि चारपाईके निकट रखी कुर्सी पर बैठ गया।

'तू तो अब बहुत बड़ा हो गया है रे !' नीलमगौरीने चारपाई पर लेटे ही लेटे एकाग्र-दृष्टि से रश्मि को देख कर कहा। रात के अंधेरे में भी रश्मि को लगा जैसे नीलम चाची की आँखों में एक विलक्षण तेज है।

जिसका उत्तर शब्दोंसे न दिया जाय उसका उत्तर मुस्कराकर दिया जा सकता है। रश्मिने मुस्करा दिया। माँ के पैरोंके निकट बैठी हुई सुरभि तिरछी चितवन से रश्मि को देख रही थी। युवतियाँ युवकोंकी परीक्षा न करती हों ऐसा नहीं कहा जा सकता। परन्तु कोई भी युवक ऐसी धारणा नहीं करता कि तिरछी दृष्टि से देखती हुई युवती परीक्षामें उसे उत्तीर्ण कर ही देगी।

'मैं स्वयं आने की चेष्टा में थी। परन्तु क्या करूँ ? अब शरीर एकदम कमजोर हो गया है।' निःश्वास छोड़ नीलमगौरी ने कहा। कितने वर्षों से वातव्याधि से उसका शरीर जकड़-सा गया है। कुछ रुककर उसने कहा—'बहुत ही बुरा हुआ। सौ मरें, पर सौ को पालने वाला न मरे।'

रश्मिके पिता का देहान्त हुए एक वर्ष से अधिक हो गया था, उसीका उल्लेख इन शब्दों में था। मृत व्यक्तियोंके प्रति उनके सम्बन्धियों के समक्ष दुःख प्रदर्शित कर सहानुभूति दर्शाना यह एक सांसारिक व्यवहार है। समस्त हिन्दू समाज में यह प्रथा प्रचलित है।

'ईश्वर ने इतना ही अच्छा किया कि तुम जैसा लायक पुत्र उन्हें दिया। पिता का नाम उज्ज्वल करना और माँ को सुख देना बेटा ! मरे हुए का रिक्त स्थान क्या कभी पूरा होता है ?'

रश्मि के मुख से कोई उत्तर न निकल सका। स्वर्गीय पिता

की चर्चा ने उसके हृदय को स्वभावतः ही द्रवित कर दिया।

'सुरभि रश्मि को तू पहचानती है?...लेकिन नहीं...तू कैसे पहिचान सकती है? मैंने ही तो इसे दस वर्ष बाद देखा है। रश्मि! विलायत में तुम तीन वर्ष रहे, क्यों?'

'हाँ चाची।'

'तुम्हारी माँ तो अच्छी तरह हैं न?'

'जी।'

'बेचारे गत वर्ष तुम्हारा विवाह करना चाहते थे, परन्तु बीच में ही ऐसा हुआ! खैर! प्रभु को जो रुचे वही ठीक। सुरभि बेटा! रश्मि के लिए जलपान लाओ और जब इसकी इच्छा हो तब भोजन करा देना।'

माँ के पैरों पर धीरे-धीरे हाथ फेरती हुई सुरभि ने एक बार माँके चेहरे की ओर देखा और तब उठकर अन्दर चली गई।

रश्मिको लगा कि सुरभि की उँगलियाँ बहुत ही सुन्दर हैं।

❀ ❀ ❀

सुरभिके पिता रामराय और रश्मि के पिता रणजीतराय अभिन्न मित्र थे। दोनों के मार्ग पृथक-पृथक थे। रामराय ने जमीन जागीर इकत्रित कर ली थी तथा स्थानीय प्रतिष्ठा से संतोष भी प्राप्त कर लिया था। परन्तु साहसी रणजीतराय के मन में बड़ी-बड़ी उच्च आकांक्षाएँ थीं। रणजीतराय ने जीवन में जब प्रवेश किया था तब उनकी स्थिति अत्यन्त शोचनीय थी। उस समय उनकी इतनीही इच्छा थी कि दस-पन्द्रह हजार रुपया एकत्रित हो जाय तो पर्याप्त है, परन्तु जब दस-पन्द्रह हजार इकट्ठा हो गया तब लाख इकट्ठा करने की प्रवृत्ति जागृत हुई। जब एक लाख प्राप्त हुआ, तब उन्होंने दस लाख से संतोष कर लेने का निश्चय किया। ईश्वर के अनुग्रह से वह

भी पूर्ण हो गया जिससे उनकी इच्छा और विशाल हो उठी।

परन्तु, धन एकत्रित करनेमें सुखका बलिदान करना पड़ता है। कोई भी सुख भोगने के लिए एक प्रकार की मानसिक शांति और शरीर के स्वास्थ्य की आवश्यकता होती है। धन उपार्जन में शरीर और मन दोनोंको परिश्रम करना पड़ता है। धनिक बनने की आकांक्षा में पत्नी के साथ प्रेमालाप करते समय भी मिल के कपड़े का ध्यान आता है तथा बालकों के प्यार करते समय दलालों का झुण्ड दिखलायी पड़ता है।

ऐसी स्थिति में रामराय और रणजीतराय का परस्पर अलग होना कोई आश्चर्य की बात न थी पहले तो दोनों प्रतिदिन एक दूसरे से मिले बिना नहीं रह सकते थे; परन्तु जैसे समय बीतता गया रामराय को लगने लगा कि उनका मित्र उनके बिना भी अपना कार्य चला सकता है। उन्होंने मित्रके यहाँ जाना बन्द कर दिया। व्यापार की व्यस्तता से ऊबे हुए रण-जीतराय वर्ष दो वर्ष में चार-पाँच दिन रामराय के गाँव आकर उनके यहाँ निवास करते थे। जीवन के पिछले भागोंमें यह क्रम भी टूट सा गया। आबू, महाबलेश्वर, मसूरी, और कश्मीर के प्रवास में दिन व्यतीत करने वाले रणजीतरायके परिवार का रामरायके परिवारके साथ परिचय भी न्यून हो गया। दोनों मित्र-मित्र तो रहे परन्तु दोनों कुटुम्बोंमें वह पहिले वाली निकटता नहीं रही। रश्मि और सुरभि भी परस्पर एक दूसरे को नहीं पहिचानते थे।

सुरभि जलपान ले आयी। ऊपर वाले खण्डमें रश्मिकी व्य-वस्था करने के लिये माता की आज्ञा थी। वह ऊपरका कमरा ठीक कर आयी थी। रात में उसने शीघ्र ही रसोई तैयार की। बात-बात में नौकरों को पुकारनेका अभ्यासी रश्मि विचारमग्न

हो उठा कि सुरभिके मुखसे एक भी शब्द क्यों नहीं निकलता ? कहीं वह गूँगी तो नहीं है ? चबूतरे परसे गाड़ीवान से पूछे गये प्रश्न की क्षीण-स्मृति अगर रश्मि को न होती तो वह अवश्य निश्चय कर लेता कि सुरभि के कण्ठ में स्वर नहीं है।

नीलम गौरीने अपनी बेटी को बुलाकर कहा, 'सुरभि ! रश्मि को अब भोजन करा दो बेटी !'

रश्मिके साथ आया हुआ नौकर केवल रश्मिके ही कार्य्योंमें लगा था ऐसी बात नहीं थी वह सुरभि को भी सहायता देने का प्रयत्न करता था, परन्तु सुरभि को उसके सहायता की आवश्यकता ही न पड़ी।

रश्मिने इतना तो अवश्य देखा कि घर में रसोंइया अथवा कोई नौकर नहीं है। सुरभि के माथे ही सारा बोझ पड़ता होगा यह वह समय गया। रश्मि के मनमें उसके प्रति सहानुभूति उपजी। इस सहानुभूति की सुरभि को आवश्यकता थी या नहीं यह दूसरी बात है, किन्तु इस जीर्ण दिखायी देते हुए घर में नौकर और रसोइया के कार्य्यों से अधिक सुव्यवस्थित तथा सम्पूर्ण कार्य उसने देखा।

किसी सुन्दरीके समक्ष एकान्तमें भोजन करना युवकों के लिए एक विकट तपस्या है। रश्मि नीचे दृष्टि किये भोजन कर रहा था। सुरभि भी नीची दृष्टि किये परोस रही थी। बाहर दालान से नीलमगौरी बीच बीच में कुछ न कुछ कहती जाती थी— 'सुरभि ! ध्यान से परोसना...वह शरमायेनहीं...बड़ा पीढ़ा बिछाना...दूध में चीनी डालना मत भूलना...रश्मि सुबह से ही भूखा है...इसका ध्यान रखना...'

नीलमगौरी से चारपाई छोड़ कर एक पग भी नहीं चला जाता था। रश्मि और सुरभि दोनों तरुण थे। दोनोंमें से कोई भी

विवाहित न था। विवाहित हों तो भी युवक युवती को एकान्त में अकेले छोड़ना उचित नहीं,यह उसकी धारणा थी। इस लिए दोनों को क्षण-क्षण में सावधान करने के हेतु वह उपरोक्त शब्दों से उनका ध्यान अपनी ओर आकर्षित कर लेती थी। इस व्यवहार से किसीका अपमान हो सकता है इतना अधिक आधुनिक शिष्टाचार उसे मालूम न था।

अन्त में रश्मि ऊपर देखे बिना नहीं रहसका। उसने सुरभि की ओर देखते हुए कहा—

'अरे, तुम तो परोसे ही जा रही हो! यह सब छूट जायगा।'

रश्मि की बोली सुन सुरभि चौंक पड़ी। उसके हाथ से बर्तन गिर पड़ा। झनझनाहट की आवाज से समूचा घर गूँज उठा। सुरभि भी रश्मि की ओर देखकर हँस पड़ी।

'क्या हुआ बेटी!' नीलमगौरी ने बर्तन की हुई आवाज के साथ ही प्रश्न किया।

'कुछ नहीं माँ।' सुरभि ने एक वाक्य में उत्तर दिया।

रश्मि ने सुरभि की वाणी सुनी। उसने सोचा कि उसके कण्ठ में स्वर है और वह भी कोकिल सा मधुर!

❀ ❀ ❀

नौकर ने कहा, 'अब घर चलो न? दूसरे दिन लौटने को माँसे कहआये थे। उसके बदले तीन दिन हो गये।'

रश्मि ने सोचा कि नौकर का कहना बिलकुल ठीक है। वह घर में अनेक कार्यों को अधूरा छोड़ आया है। वैभव भोगने वाले रश्मि को इस जीर्ण मकान का वास क्यों रुच रहा है? बाहर से जीर्ण दिखलायी पड़ने वाले घरके अन्दर स्वच्छता और सफ़ाई की कमी न थी, बल्कि रश्मि के कमरे में तो थोड़ी गृह-शृंगार की वस्तुएँ भी सजी थीं। पिता के समय की वस्तुएँ जो आज तक

निरुपयोगी पड़ी थीं उन्हें साफ कर सुरभि रश्मि की दृष्टि से छिप-छिपकर कमरे में सजा जाती थी। तीन दिनों में रश्मि ने भाग्यवश सुरभि को तीन बार बोलते हुए सुना था, इसी कारण उसे यहाँ से लौटने की इच्छा न होती थी।

नौकर की उपरोक्त बात सुन कर उसने कहा—

'बात तो ठीक है! परन्तु चाचीजी का आग्रह इतना अधिक है कि उस कार्य के बारे में आज तक कोई बात भी न कर सका।'

'तब! आज ही सब बातें कर लो न?' नौकर अनेकों वक्त सलाहकार का भी कार्य करते हैं।

शाम को नीलमगौरी से रश्मि ने कहा, 'चाचीजी! मैं कल सुबह जा रहा हूँ!'

'इतनी जल्दी?' नीलमगौरी ने चारपाई पर लेटे ही लेटे पूछा। सुरभि ने भी ऊपर की ओर दृष्टि उठायी।

'घर से तार आया है, वहाँ बहुत से काम बाकी पड़े हैं।'

'अच्छा, तो ठीक है! और क्या कहूँ? इस प्रकार तुमने आकर मिल लिया यही हमारे लिये बहुत है! नहीं तो आज कल टूटे हुए सम्बन्ध को पुनः कौन जोड़ता है?'

'परन्तु मेरे यहाँ आने का एक कारण भी है।'

नीलमगौरी चौंक उठी। आज-कलका अवारा लड़का, जाने क्या कारण बतलाये!

'मुझे कुछ रुपया यहाँ दे जाना है।'

'अच्छा कोई कोठी नहीं मिली?' हँस कर नीलमगौर ने पूछा।

'नहीं नहीं, आपको ही देना है।'

'तीन दिन यहाँ रहे उसका किराया देने की सोच रहे हो शायद!'

'नहीं, चाचीजी, भला ऐसा हो सकता है ?'

'तब, क्या भेंट देना है ?' आँखों को चमकाते हुए हँसकर नीलम,गौरी ने पूछा।

'नहीं, आपका ऋण चुकाना है।'

'हमारा ऋण ? कैसा ऋण ?'

'पिताजी ने वसीयत नामें में लिखा है...'

रश्मि ने जेब से एक दस्तावेज निकाला। उसके पिता का वसीयत नामा था वह, उसमें एक कलम यह भी था—

'भाई रामरायजी...बीस हज़ार रुपया ऋण स्वरूप अपने ऊपर बाकी है, उसे उनकी पत्नी को अगर वह जीवित हो तो चुकाना यदि वह जीवित न हो अथवा लेना अस्वीकार करे तो उनकी कन्या सुरभिगौरी को, दिया जाय।'

सुरभि शब्द उच्चारण करते समय रश्मि का कण्ठ कंपित हो उठा। सुरभि अपने पैर के अंगूठे की ओर देख रही थी। नीलमगौरी धीमे स्वर में बोली—

'रश्मि ! मुझे मेरा ऋण वापस मिल चुका है ?'

'किस प्रकार ! इस वसीयतनामें में तो आपका ऋण देना लिखा है !'

नीलमगौरी ने पूर्व इतिहास उधेड़ा।

रणजीतरायको एकसमय पाँच हज़ार रुपयों की विशेष आवश्यकता पड़ी। व्यापार का प्रारम्भ ही था। जो यह पाँच हज़ार रुपया उस समय न मिला होता तो वे व्यापार आगे नहीं चला सकते थे। रामरायजी ने सच्चे मित्र के कर्तव्यानुसार व्यवस्था कर पाँच हज़ार रुपया उन्हें दिया और अपनी मित्रता निभायी। दो तीन वर्ष बाद रामरायजी को व्याज सहित यह धन लौटाने के लिए रणजीतराय आये। रामराय ने व्याज का धन नहीं लिया।

रणजीतराय अपने मित्र का उपकार भूल जाँय ऐसे व्यक्ति नहीं थे। व्याज के धन को उन्होंने रामराय के ऋण स्वरूप व्यापार में लगाया, और उससे अच्छा लाभ किया।

रामराय के जीवन में एक दो बार वह दस हजार रुपया देने के लिये पधारे रामराय ने लेना अस्वीकार कर दिया।

'तुम तो पागल हो गये हो! क्यों अपना धन देने के लिए आग्रह करते हो?' रामराय उन्हें प्यार से डाँटते हुए कहते।

'अरे, अगर आप न होते तो हमारी स्थिति क्या होती? आधीरात्रि को आपने बिना किसी जमानत पाँच हजार रुपया—देकर मेरी सहायता की थी, क्या यह मैं जीवन में कभी भूल सकता हूँ?'

'उससे क्या? तुमने तो मेरा ऋण मुझे लौटा दिया है!'

'नहीं, सूद बाकी है।'

'लेकिन मुझे किसी को व्याज नहीं देना पड़ा है इसलिये मैं व्याज नहीं लूँगा।'

'देखो, खेद मत करो, तुम्हारे सूद का धन मैंने अलग कर दिया था वह बढ़कर इतना हो गया है, इसे लिये बिना नहीं चलेगा।'

'तो तुम जादूगर हो! जो पाँच हजार रुपये के व्याज को कुछ ही दिनों में दस हजार बनाकर लाये हो! यह तुम्हारे परिश्रम का फल है इसे मैं नहीं ले सकता।'

'व्यापार में तो ऐसे ही...'

'मैंने कहाँ व्यापार किया?'

'तुम्हारे धन से तुम्हारे नाम से मैंने व्यापार किया।'

'देखो, अगर पूर्ण रूप से तुम्हें मुझे उपकार का बदला चुकाना है तो तुम अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति मेरे नाम लिख दो।

मैंने तुम्हें यह धन दिया था उसी से तुम लखपती बने, इसलिए तुमने जो भी कमाया वह सब मेरा है !'

यह सुनते ही रणजीतराय ने उसी समय अपने मुनीम को बुलाकर दस्तावेज लाने की आज्ञा दी।

'अपनी सम्पूर्ण सम्पत्ति भाई रामरायजी के नाम कर दो।'

रामराय ने हँसते हुए मुनीम से कहा—

'तुम्हारे मालिक उदारता की परिधि के पार जाना चाहते हैं। आओ बैठो, इनके कहने के अनुसार क्या कोई करता है ?'

इस प्रकार रामराय ने अपने नाम से जमा किया हुआ धन रणजीतराय के सतत प्रयत्न करने पर भी नहीं लिया। रामरायजी के स्वर्गवास होने के पश्चात् नीलमगौरी को वह धन देने की रणजीतराय ने चेष्टा की, परन्तु पति का अभिप्राय जानने वाली विधवा ने धन के अभाव में भी उसे ग्रहण करना अस्वीकार कर दिया। अन्त में रणजीतराय को इस धन की क्या व्यवस्था की जाय इसका उल्लेख अपने वसीयत नामे में करना पड़ा। पिता की मृत्यु के पश्चात् इस वसीयतनामे के आधार पर रश्मि को इस धन की व्यवस्था करनी थी। रश्मि की माता ने विवेक पूर्वक ही इनलोगों के सम्मान का ध्यान कर रश्मि को स्वयं इस कार्य के लिये भेजा।

इसी कारण वह नीलमगौरी के यहाँ आया था।

उसे इस पूर्वेतिहास का ज्ञान न था।

'कहो, अब मैं यह धन कैसे ले सकती हूँ ?'

रश्मि चौंका। इस ग्रामवासी कुटुम्ब में सौन्दर्य के साथ ही साथ इतना उच्च संस्कार भी है ! जो लेनदेन के व्यवहार में इतनी सूक्ष्म-पृथक्करण की शक्ति का उपयोग करता है उसमें अपने स्वाभिमान के प्रति एक प्रकार मान अवश्य है यह उसने

समझ लिया। उसे लगा कि यह हर प्रकारसे जीर्ण और प्रभाहीन घर इन चमकते हुए रत्न दीपों से नित्य ही प्रकाशमान है। ये उद्दीप्त गृहिणियाँ, बल्कि इनमें भी यह सुरभि इसके लिए अधिक ज्वलंत दिखायी पड़ रही है।

'किन्तु चाचीजी। यह वसीयतनामें की लीक है, जो मिट नहीं सकती!'

'तब ऐसा करो। यह धन मैंने ले लिया ऐसा समझो। अब मैं तुम्हारे विवाह की भेंट में यह तुम्हें दे रही हूँ, बस?'

रश्मि फिर चौंका।

'परन्तु मेरा विवाह कहाँ हुआ है?'

'अगले वर्ष तो होगा ही। उस समय भेंट में यह धन लौटा लेना।'

'किन्तु वसीयतनामें में तो···तो···सुरभि गौरी को अधिकारी बनाया है?' रश्मि ने कहा।

'सुरभि की इच्छा सुरभि जाने, मैं क्या कहूँ? क्यों सुरभि?'

'नहीं माँ। हमें इसे नहीं लेना है। मैं भी इनके विवाह की भेंट में यह इन्हें दे रही हूँ।' सुरभि तीन दिनों में इतना लम्बा वाक्य आज ही बोली थी। रश्मि का खून अन्दर ही अन्दर ज्वार लेने लगा। इस कोकिल कण्ठ को सतत सुनना हो तो इस कोकिल को क्या पकड़ कर रखना आवश्यक नहीं है?

समूची रात्रि सुरभि के विचार में बिताने के पश्चात सुबह तड़के उठकर जाना रश्मि को रुचिकर प्रतीत न हुआ। किन्तु सुरभि ने पौ फटते-फटते तक रश्मि के जाने की पूरी व्यवस्था कर दी थी, द्वार पर से गाड़ीवान पुकार रहा था इसलिए अब जाने के सिवा कोई चारा न था।

दोनों युवक और युवती पर रात दिन पहरे के लिए

नीलमगौरी ने पड़ोस की गंगा नाम की सहेली को दो दिनों से अपने यहाँ रख लिया था। इस कारण पहिले दिन नीलमगौरी की पड़ी मुश्किल आसान हो गयी थी। बात करने के लिए भी क्षणभर का समय किसी को भी नहीं मिल सकता था।

परन्तु वृद्धों के कारागार की दिवारों को युवा लोग छेद सकते हैं। रश्मि की वस्तुएँ गाड़ी में व्यवस्थित रूप से रखने के बहाने सुरभि चबूतरे पर खड़ी थी। रश्मि चाची को प्रणाम कर बाहर आया। सुरभि ने बहुत ही धीमें स्वर में नीची दृष्टि किये हुए कहा—

'फिर आइयेगा···'

रश्मि क्षणभर रुका फिर एक कुशल सेनापति की भाँति तुरत ही उसने निश्चय किया, और उत्तर देने के बदले उसने प्रश्न किया—

'सुरभिगौरी! इसका निपटारा किस प्रकार होगा?'

'किसका?'

'आपके ऋण का।'

'अब उसमें बाकी क्या रहा? हमलोगों ने तो उसे उपहार दे दिया।'

'इस प्रकार सीधी-सीधी भेंट लेजाऊँ ऐसा हल्का आपने मुझे समझ लिया है! क्यों ठीक है न?'

'ना···ना···'

'मुझे विवाह में उपहार में देना चाहती हो?'

'जी' मुँह पर समूचे बदन का खून एकत्रित कर सुरभि बोली।

'किन्तु इसके साथ ही मुझे एक सलाह भी दो न?'

'क्या?'

'मैं विवाह किसके साथ करूँ?'

सुरभि के शरीर पुलकित (?) हो उठा। उसे लगा कि उससे बोला नहीं जायेगा। सचमुच, उसके होंठ एक दूसरे से चिपक गये और वह मूर्तिवत खड़ी रही।

'तुम 'हाँ' न कहोगी ?'

सुरभि ने प्रथम बार रश्मि की ओर पूर्ण दृष्टि से देखा—

'मैं तो गाँव की हूँ, आपको शोभा नहीं दे सकती।'

'यह ठीक है, तुमने स्वीकृति दी है ऐसा मान कर मैं जा रहा हूँ।'

'परन्तु अपनी माँ को अकेली छोड़कर मैं कहीं कैसे जा सकती हूँ ?'

'मैं यहीं आकर रहूँगा ?' रश्मि ने हँसकर कहा।

गाड़ीवान ने पुकारा—'साहब ! देर हो जायेगी !'

रश्मि ने घड़ी की ओर देखा और तेजी से गाड़ी की ओर बढ़ गया घर लौटने के लिए एकदम उतावला हो उठा।

तीसरे दिन रश्मि की माता नीलमगौरी के पास आयीं। धनिक विधवा के साथ मनुष्य तो थे ही परन्तु सुरभि को समझ न पड़ा कि तीन दिन बाद ही मेहमान फिर क्यों आ रहे हैं ! वह रश्मि की माता को घर में पहिचान कर द्वार के पीछे छिपी दोनों वृद्ध स्त्रियों की बातें सुनने लगी।

'मैं तो अपना आँचल फैलाये हुए आयी हूँ, मैं जो मागूँगी सो तुम्हें देना होगा।' रश्मि की माता ने कहा।

'बहन ! यह क्या कह रही हो ? सब कुछ तुम्हारा ही है।' नीलमगौरी ने उत्तर दिया।

'मुझे सुरभि दो। हमारे रश्मि की जोड़ उससे अच्छी रहेगी।'

'तुम्हारे धनी परिवार में यह लड़की शोभित न होगी बहन !'

'ऐसी बात न कहो। हम कैसे धनाढ्य हुए वह मुझे कहना पड़े ऐसा नहीं है। रामरायजी अगर न होते तो...'

'तुम जानों। लड़की तुम्हारी है, मैं तो लूली हूँ।'

पड़ोस की गङ्गा बहन वहाँ बैठी थी उसने कहा—

'रश्मि ने तो घरजवाँई की तरह रहना स्वीकार कर लिया है। बहन।'

रश्मि की माता हँसी।

नीलमगौरी ने कहा—'चुप रहो बहन तुम क्या जानों?'

'बाहर चबूतरे पर दोनों जने जब बातें कर रहे थे तो मैं दरवाजे के पीछे से सुन रही थी।' गंगा बहन ने कहा।

'ऐसा नहीं हो सकता? सुरभि कभी बात नहीं कर सकती।' नीलमगौरी सुरभि के स्वभाव का परिचय देती हुई बोली।

'मैं सत्य कह रही हूँ।' "माँ को छोड़ कर मैं कहीं नहीं जा सकती" ऐसा जब सुरभि ने कहा तब रश्मि ने यहाँ आकर रहने की स्वीकृति दे दी।' गंगा बहन ने अपनी गवाही पूर्ण की।

सुरभि के हाथ से अन्दर कोई बर्तन गिर गया। समूचा मकान इसकी आवाज से गूँज उठा।

परन्तु नीलमगौरी ने 'क्या हुआ' पूछा नहीं—

चिल्लाकर पूछा जा सके ऐसी शक्ति ही उसमें न थी।

त्यक्ता

बहुत थोड़े शिक्षकों के भाग्य में विद्यार्थियों का प्रिय होना लिखा होता है अधिकतर वे अपना प्रभाव स्थापित करने के लिए ही छात्रों को कभी हँसाते और कभी भय भी दिखाते हैं। परन्तु विनोदराय में इन बातों का अभाव होते हुए भी वे एक आदर्श शिक्षक थे। अपनी उच्चकोटि की शिक्षा-प्रणाली, हँसमुख स्वभाव, क्रिकेट, टेनिस आदर्श खेलों में सहयोग और सुख-दुःख में पूर्ण सहानुभूति द्वारा ही वे अपने प्रति छात्र वर्ग में पूज्य भाव उत्पन्न कर सके थे। नगर की मुख्य पाठशाला के प्रधानाध्यापक के पद पर बदल कर आए उन्हें अभी दो ही मास हुए थे, किन्तु इन इतने से दिनों में ही उन्होंने बाजीगर की भाँति बालकों को मुग्ध कर लिया था।

सायंकाल क्रिकेट खेल कर घर आए अभी कुछ ही समय बीता था कि खिलाड़ी विद्यार्थियों की एक टोली दूसरे दिन के मैच के लिए खिलाड़ियों का चुनाव कराने आ पहुँचा। विनोद-यार के लिए यह कोई नई बात न थी।

मैच का दिन विद्यार्थियों के लिए एक बड़े पर्व का दिन होता है। बातों के क्रम के बीच विनोदराय ने एकाएक पूछा, "क्या आज कुछ अधिक ठंढक है ?"

'नहीं तो !'

'फिर मेरे शरीर में कँपकँपी-सी क्यों मालूम हो रही है ?'

'कहीं बुखार तो नहीं आया, मास्टर साहब ?'

'क्या कह रहे हो ? कल तुम्हारा मैच है और आज मुझे बुखार आयेगा ! यह नहीं हो सकता—हँसते-हँसते विनोदराय ने अपना दाहिना हाथ कपाल, दूसरे हाथ की कलाई, तथा छाती पर फेर कर कहा—'शरीर तो गरम नहीं मालूम होता।'

इतने में ही शरीर पुनः एक बार काँप उठा। उन्होंने अपना दाहिना हाथ एक विद्यार्थी की ओर बढ़ा कर पूछा—देखो तो तुम्हें क्या मालूम होता है ?'

'ओह ! बुखार तो काफी तेज है। शरीर तप रहा है।' उसने उत्तर दिया।

'डाक्टर बुला लाऊँ ?' दूसरे छात्र ने पूछा।

'उलटा ? अरे नहीं नहीं ! थोड़ी देर में उतर जायेगा, मैं क्वीनाइन की गोलियाँ खाये लेता हूँ।' विनोदराय पलङ्ग पर जाकर लेट गये और दो-तीन ओढ़ने ओढ़कर विद्यार्थियों से कहा—'अब इस समय तुम लोग जाओ।'

'आज्ञा हो तो रात्रि में आ जाऊँ ?' जाते-जाते दो एक विद्यार्थियों ने पूछा।

'नहीं जी इसमें क्या धरा है।' विद्यार्थी विदा हो गए।

शिष्यों की कर्तव्य-निष्ठा सैनिकों के सदृश होती है वे अध्यापक के अनेक दोषों को न देख उनके गुणों पर ही मुग्ध रहते हैं। उनके मन में प्रायः दुर्भावनाओं का उदय ही नहीं होता। शिक्षकों से प्रतिशोध लेने की शायद ही कभी उनकी इच्छा होती हो। अधिकतर वे उनके कटु व्यवहार को भी सहन कर लेते हैं ! अप्रिय शिक्षकों के प्रति जब उनकी इतनी अधिक श्रद्धा रहती है तब जिसके प्रति उन्हें अधिक आकर्षण होता है

उसके लिए वे क्या न करेंगे।

दूसरे दिन बड़े तड़के ही उनका हाल जानने के लिए विद्यार्थियों का समूह आ पहुँचा। परन्तु तब तक वे जागे नहीं थे।

विद्यार्थी घंटे दो घंटे तक उनके जागृत होने का आसरा देखते रहे। परन्तु व्यर्थ। नौकर ने भी उन्हें जगाने के अनेक प्रयत्न किये, पर सब निष्फल हुए तब एक दो विद्यार्थियों ने चेष्टा की...'मास्टर साहब...मास्टर साहब...'

अनेक चेष्टाओं के बाद जब आँखें खुलीं तो वे ज्योतिहीन विकल तथा अस्थिर थीं।

घबराकर विद्यार्थी दूसरे शिक्षकों के यहाँ दौड़ गये। प्रधानाध्यापक के बेहोशी का हाल सुन शिक्षक डाक्टर को साथ ले कर आए।

डाक्टर आते ही चिघ्घाड़ उठा।

"बीमार मनुष्य के निकट भेड़ों की तरह इतने लड़के क्यों एकत्रित हैं?"

बीमार के हित के लिये चिकित्सक को एकमात्र कड़वी औषधि ही नहीं, बल्कि कड़वी बातें कहने का भी अधिकार प्राप्त है। अपने प्रिय अध्यापक के लाभ का ख्याल कर किसी ने कुछ भी प्रत्युत्तर नहीं दिया। क्षण मात्र भी विलंब न कर चिकित्सक ने रोगी की परीक्षा की और शिक्षकों तथा विद्यार्थियों की ओर घूम कर बोला—"स्थिति गंभीर है! त्रिदोष हो गया है!"

सबके चेहरे पर चिन्ता की रेखाएँ दौड़ गयीं।

"घर में कोई स्त्री है?"

"कह नहीं सकते।"

"जब आप इतना भी नहीं जानते तो फिर यहाँ एकत्रित क्यों हैं? माँ, बहिन, पत्नि, क्या कोई भी नहीं है?" डाक्टर ने

चिल्लाकर पूछा।

विनोदराय के पारिवारिक जीवन के बारे में किसी को कुछ भी मालूम नहीं था। इनकी विलक्षण प्रतिभा तथा मृदु व्यवहार से ही लोग इतने अधिक प्रभावित थे कि उनके निजी जीवन से सम्बन्ध रखने वाली बातें जानने की किसी ने कभी कोई चेष्टा नहीं की थी। घर में किसी स्त्री के न दिखाई देने से लोग उन्हें अविवाहित ही समझते थे। किसी का ख्याल था कि वे विधुर हैं। कुछ कहते थे कि इन्होंने या तो अपनी पत्नी को छोड़ दिया है या पत्नी ने इन्हें। इन किंवदन्तियों ने उनके पारिवारिक जीवन पर एक व्यूह सा रच दिया था—जिसका भेदन बिना मित्र के होना असंभव-सा था।

सिवा विद्यार्थियों के विनोदराय का कोई मित्र भी नहीं था। उन्हें यह जानने की कभी उत्कण्ठा ही नहीं हुई कि विनोदराय विवाहित हैं या अविवाहित।

"मैं पता लगाता हूँ" कह कर शिक्षक ने एक विद्यार्थी से विनोदराय के रसोइयें को बुलवाया।

"तुम साहब के पास कितने दिनों से हो?"

"लगभग पन्द्रह वर्षों से।"

"घर में माँ बहिन कोई है?"

उसने नकारात्मक सिर हिला दिया।

"स्त्री?"

रसोइयाँ इस प्रश्न से चौंक उठा उसके मुख पर उदासी छा गयी। उसने विचित्र दृष्टि से डाक्टर और शिक्षक की ओर देखकर पूछा, "क्यों क्या काम है?"

"क्या काम है? देखते नहीं? पत्नी के परिचर्य्या बिना शायद ही तुम्हारे साहब उठ सकें! जाओ, जल्दी करो अभी

तार देकर बहू को बुलाओ।" डाक्टर ने गरज कर कहा।

विनोदराय की चेतना उसी प्रकार लुप्त थी, शिक्षक ने तार लिखने लिए एक कागज लेकर रविशंकर से बहू का पता पूछा—रसोइयाँ फिर असमञ्जस में पड़ गया। वह बारी बारी से विनोदराय, डाक्टर और शिक्षक की ओर देखने लगा।

"अब क्या देर है ?" डाक्टर ने डाँटकर पूछा।

रसोइये ने चुपचाप पता लिखवा दिया।

शिक्षक ने तार में विनोदराय की गम्भीर स्थिति का समाचार लिखकर एक विद्यार्थी द्वारा पोस्ट आफिस भिजवा दिया।

आज सबको विदित हुआ कि विनोदराय विवाहित हैं। विद्यार्थी, शिक्षक और डाक्टर सभी विनोदराय की पत्नी के आगमन की प्रतीक्षा करते हुए उनकी परिचर्य्या करने लगे।

विद्यार्थियों का मैच आज बन्द रहा।

❀ ❀ ❀

"रमा बहिन ! यह तार आया है" रसोई के कार्य में रत रमा से उसकी भाभी ने कहा।

"किसका है सब अच्छी तरह तो हैं ?" तार का नाम सुनकर चिन्तातुर हो रमा ने पूछा।

"विनोदराय का...." भाभी ने उत्तर दिया।

"तुम्हें क्या हो गया है भाभी, जो आज इस उम्र में मेरी इस तरह हंसी उड़ा रही हो ?" रमा ने उदास हो कर कहा।

रमा के विचार से इस प्रकार की हंसी के लिए उसकी उम्र बीत चुकी थी। जवानी के रंगीन दिनों को स्वप्न की भाँति बिताकर इस समय वह अधेड़ अवस्था प्राप्त कर चुकी थी। स्वस्थ और स्वरूपवती होते हुए भी उसने जाड़ा गर्मी और बरसात के पैंतीस वर्ष इसी शरीर से ही तो बिताये हैं, जिसकी

स्पष्ट रेखायें मुख के ऊपर दृष्टि गोचर हो रही थी ?

"मैं सच कह रही हूँ, तुम्हें वहाँ बुलाया है।" भाभी ने गम्भीरतापूर्वक कहा। वह अच्छी तरह जानती और समझती थी कि विनोदराय सम्बन्धी बातें रमा की पूर्व स्मृति को जागृत कर उसे विशेष कष्ट देती हैं। वह उनकी आश्रिता थी यह ठीक है, परन्तु क्या उस आश्रय के बदले में वह अपने अकथनीय शारीरिक परिश्रम और शान्त स्वभाव से उनके पोषण करने का मूल्य नहीं चुकाती थी ? रमा के बिना उसके गृहस्थी की व्यवस्था क्या जड़वत नहीं हो जाती है ?

"पन्द्रहवर्ष बाद आज बुलाने की क्या सूझी ?" रमा ने प्रश्न किया।

"तार है, पढ़ लो" भाभी ने उत्तर में उसकी ओर तार बढ़ा कर कहा।

तार अच्छी तरह पढ़ और समझ ले इतना अङ्गरेजी का ज्ञान रमा को था। तार पढ़ते ही उसका चेहरा गंभीर हो उठा। तार में लिखा था, "रमा बहन को पहिली गाड़ी से भेजो, विनोदराय खतरे में, पूर्ण परिचर्य्या बिना बचने की आशा नहीं।"

रमा ने तीन चार बार तार पढ़ा, मुख पर अनेक भाव आये और चले गये। अन्त में उदासी ने आधिपत्य जमा लिया।

थोड़ी देर बाद रमा ने पूछा—"भाभी क्या करना चाहिए?"

"जाने की तैयारी करो।"

"लेकिन वहाँ जाकर मैं क्या करूँगी ? मेरी ओर तो वे देखेंगे भी नहीं !"

"फिर भी जाना तो होगा ही ! और यदि आवश्यकता समझो तो मैं भी साथ चली चलूँगी।"

"आप चल कर क्या करेंगी ?" साधारण-सी बीमारी में तो

आप घबड़ा जाती हैं।"

"तो अपने भाई को साथ ले जाओ।"

"पर आज ही कौन अच्छा कर देगा ?"

"तो......"

"मैं जाती तो हूँ, पर पैर पीछे पड़ते हैं"

"पैर बढ़े या न बढ़े जाना तो है ही। फिर बिना बुलाये जा भी तो नहीं रही हो ?"

"पर, तार तो डाक्टर ने दिया है।"

"इस समय न जाने से जन्म भर के लिए कलंक का टीका लग जायगा।"

"कलंक का टीका ?" रमा ने दुःख भरे स्वर से कहा "क्या अभी भी कुछ बाकी है ?"

रमा और उसकी भाभी के बीच बहुत देर तक बात चीत होती रही। अन्त में निश्चय हुआ कि—रमा एक नौकर को साथ लेकर विनोदराय के यहाँ जाये। दूसरे दिन छुट्टी लेकर भाभी को साथ लेकर भाई भी आयेंगे।

पन्द्रह वर्ष के बाद पतिगृह जाने के लिए आज फिर से रमा ने नैहर से पैर निकाला, पर वह किसी प्रकार भी आगे बढ़ने का नाम नहीं ले रहा था। उसके हृदय में नाना प्रकार के भावों ने एक विस्तृत जाल-सा बिछा दिया था। उसी में उलझी हुई वह निश्चित स्थान की ओर अग्नि-रथ की सहायता से क्षण क्षण बढ़ती जा रही थी। पति-गृह के स्टेशन पर उतरने के लिए उसका मन किसी प्रकार भी तैयार नहीं हो रहा था। उसकी तीव्र इच्छा हो रही थी कि वह तुरत भाई के यहाँ लौट जाय।

विचारों में लीन रमा अपने गन्तव्य स्थान पर पहुँच चुकी थी, पर—उसका उसे कुछ भी भान न था। रात्रि के घने अन्ध-

अन्धकार कृत्रिम प्रकाश के बीच किसी ने पूछा "आप कहाँ से आ रही हैं ?"

रमा ने स्टेशन का नाम बतलाया ।

"आपका शुभ नाम रमा बहन है ?"

"जी !"

विद्यार्थी ने कहा "मैं आप के लिए ही स्टेशन आया हूँ ।"

"अच्छा !" कह रमा विद्यार्थी के पीछे पीछे चली ।

विद्यार्थी यह निश्चय न कर सका कि रमा निष्ठुर है, अथवा पति की बिमारी के समाचार से भयभीत हो उठी है। तांगे में बैठी हुई अपने विचारों में तल्लीन रमा से विद्यार्थी ने कहा—"मास्टर साहब की तबीयत बहुत खराब हो चुकी है !"

"जानती हूँ !"

"आपने आकर बहुत ही अच्छा किया !"

"क्यों ?"

"भला हमलोग आपके समान परिचर्या कर सकते हैं ? हम सब कल रात भर वहाँ रहे पर......"

जिस पति का संपूर्ण कार्य्य आज पन्द्रह वर्षों से रमा के बिना सुचारु रूपसे चल रहा है, उसी पति के विद्यार्थी को रमा की इतनी अधिक आवश्यकता पड़े ! वाह रे भाग्य ! रमा मन ही मन नाना प्रकार की कल्पनाओं में उलझ रही थी—मेरी ओर देखेंगे या नहीं ?...और यदि देखेंगे तो क्या बोलेंगे ? कुछ पूछेंगे तो मैं क्या उत्तर दूँगी ? मैं यहाँ आई ही क्यों हूँ ? लौट जाऊँ तो ? क्या डाक्टर और विद्यार्थी कम सेवा करते होंगे ? मैंने यहाँ आने का निश्चय ही क्यों किया ?.....एकाएक गाड़ी रुकी । रमा को लगा कि गाड़ी के गति के साथ ही साथ उसके हृदय की गति भी रुक गयी है । विद्यार्थी ने विनय पूर्वक कहा, " घर

आ गया।"

किसका घर ? पति के घर में उसका अधिकार ही क्या है ? वह चुपचाप गाड़ी से उतरी। घर में प्रवेश करने के साथ ही हृदयकी गति तीव्र हो उठी। अब वापस लौटना असंभव था।

उसने विद्यार्थी से ससंकोच पूछा—"इस समय जागते तो होंगे ?"

"नहीं ! वे तो बेहोश हैं।"

पति से आँखें चार न होंगीं, प्रत्युत्तर न देना होगा, इन विचारों ने रमा के मन को कुछ साहस दिया।

बाहर के कमरे में एक दो अध्यापक और काफी विद्यार्थी मूर्तिवत शांत बैठे थे। साथ वाला छात्र रमा को ऊपर कमरे में ले गया। मंद प्रकाश में पलङ्ग पर एक आकृति लंबी पड़ी थी। भय-ग्रस्त रमा उसे अच्छी तरह न देख सकी।

"आप आ गईं बहुत ही अच्छा हुआ। आपकी शुश्रुषा बिना ये अच्छे नहीं हो सकते।" एक स्थान पर बैठा डाक्टर बोल उठा।

थरथराते पैरों से रमा सिरहाने के निकट जा कर खड़ी हो गयी। डाक्टर जान चुका था कि पत्नि बिना विनोदराय का पन्द्रहवर्ष बीत चुका है।

"नजदीक जा कर अच्छी तरह से देखिये। घबराइये नहीं, पूर्ण सावधानी और सेवा से निश्चित ही अच्छे हो जायँगे। आप अकेली हैं ऐसा मत समझियेगा, जब इच्छा और आवश्यकता हो मुझे बुलवा लीजियेगा, मैं तुरत आ जाऊँगा।"

डाक्टर की मीठी बातें और अपनत्व के भाव ने रमा को पलङ्ग पर बिठा दिया। दिल के गुप्त स्थान में छिपे प्रेम ने अवसर देख बाहर मुँह निकाला। रमा परिचर्य्या में लीन हो गयी।

डाक्टर ने जाते जाते कहा—"पूरी रात माथे पर बरफ रखियेगा और चार घंटे पर मेरे पास समाचार भेजा कीजियेगा। एक दो मनुष्यों से अधिक यहाँ न रहें। विद्यार्थियों को विशेष अन्दर मत आने दीजियेगा।"

डाक्टर को पता नहीं था कि विद्यार्थियों के हृदय में विनोद-राय के प्रति कितना अधिक स्नेह है। डाक्टर और शिक्षक इत्यादि घर चले गये। सिर्फ चार विद्यार्थी, रमा और रसोइयाँ ही बचे रहे। रसोइयाँ ने रमा से भोजन के लिए आग्रह किया।

रमा के हृदय में उस समय तूफान उठा हुआ था। उसने खाना नहीं खाया।

रसोइयाँ बैठा बैठा ऊँघ रहा था। उसे रमा ने सोने जाने की आज्ञा दे दी। रसोइयें के सर का बोझ टला। वह गृहिणी की आज्ञा मान चला गया। परन्तु विद्यार्थी उतनी आसानी से रमा की आज्ञा से विश्राम के लिए तैयार न हुए। उन्होंने पूर्ण रात गुरु की सेवा करने का पूर्ण निश्चय कर लिया था। मध्य रात्रि बीती, पिछली रात्रि आई, पर वे न सोये।

अन्त में रमा ने उनसे कहा—'जाओ सो रहो! अगर रात भर जागरण करोगे तो कल से यहाँ न आ सकोगे।'

"पर हम लोगों को नींद जो नहीं आ रही है?"

'मेरी बात मानो। तुम लोग जा कर...'

'आप थकीं हैं, आप ही सो जायं तो कैसा हो?'

"मैं जब थक जाऊँगी, तो तुम्हें जगा दूँगी। तुम्हारे गुरु की पत्नी होने के नाते मैं आज्ञा देती हूँ—जाकर सो जाओ।"

बेचारे विद्यार्थी अगले कमरे में जा कर सो रहे। अकेली रमा परिचर्य्या में लीन हो गयी।

एकान्त होने पर रमा ने एक भय मिश्रित दृष्टि व्याधिग्रस्त

बिनोदराय पर डाली।

"बहुत बदले नहीं हैं।" उसके मन ने कहा। आज पन्द्रह वर्ष बाद उसे पति के दर्शन का शुभ अवसर मिला था। पति के मुख पर व्याधि के कारण बेचैनी और बेहोशी की स्पष्ट छाया दिखलाई पड़ती थी। कितनी दयापात्र अवस्था! रमा के हृदय में लोकलाज से भी अधिक दया ने अपना प्रभाव जमा लिया। उसने विनोदराय के निश्चेष्ट हुए हाथों को अपने हाथों में ले लिया।

"बाप रे! कितना तेज बुखार है?" रमा एकाएक भयभीत हो गई।

क्यों? बीमार मनुष्य के प्रति सब को दया आती है यह सत्य है, परन्तु ज्वर की अधिकता अति निकट सम्बन्धी के लिए भय का कारण होती है। तो क्या रमा विनोदराय की निकट सम्बन्धी है? वह उनकी पत्नी है पर...पर क्या? क्या कभी उन्होंने उस निकटता का अनुभव किया? फिर क्यों इस समय उसका हृदय ज्वर देख विकल और भयभीत हो उठा?

मैं न आई होती तो ये बेचारे विद्यार्थी किस प्रकार परिचर्या कर पाते? रमा को अपना आना अब निरर्थक न लगा।

"परन्तु, इस ज्वर के पहिले कभी साधारण ज्वर भी न आया होगा, यह किस प्रकार माना जा सकता है?....बेचारा!" पति का विचार आते ही जिसका हृदय वज्र-सा कठिन बनता है उसी मानिनी का हृदय पति की असहाय तथा दयनीय अवस्था देख नवीनत-सा कोमल हो जाता है।

'उस वक्त मुझे बुलाया होता तो?'

पति के द्वार पर पैर न रखने की प्रतिज्ञा किये हुए उसे पन्द्रह वर्ष बीत चुके अब भला वह क्यों भूतकाल में गोते लगा

रही है ? उन्होंने बुलाया होता तो अवश्य आती ? विनोदराय के अंतः का छलछलाता दाम्पत्य प्रेम, उनकी सरलताके अनेक प्रसंग आँखों के सामने साकार रूप में खड़े हो गये। पति का थोड़ा इशारा मिलते ही वह पीछे दौड़ी हुई लौट आती ऐसी इस समय उसकी मानसिक-स्थिति का उसे अनुभव हुआ। इतना ही नहीं अपने बुलाने के लिये प्रार्थना पत्र भी एकबार पति को भेजने के लिये लिखा था। कितने दिनों तक यत्नपूर्वक रखने के बाद अन्त में फाड़ कर फेंक दिया।

भूतकाल की भूली घटनायें आज पति की परिचर्या करते समय आँखों के समक्ष दृश्य भान हो उठी। कितने हौंसले से विनोदराय के साथ इसने विवाह किया था ? कितने-कितने सुख दोनों ने एक साथ इन इने गिने दिनों में भोगे थे, उच्च शिक्षा से शिक्षित और अनन्त गुणों से पूर्ण युवक विनोदराय तथा सुसंस्कारित व लावण्यवती युवती रमाका विवाह समाजके लिये आदर्श था। परन्तु परिणाम में दम्पत्ति को १५ वर्ष का वियोग स्वेच्छा से ग्रहण करना पड़ा था। दाम्पत्य सुख की चपल तरङ्गों की बहती धारा शुष्क भूमि के कठोर रेगिस्तान में पहुँच स्नेह नीर को खो अदृश्य हो गई थी !

परन्तु हिन्दू संस्कृति में पत्नी तथा लोक-लाज के आवरण से अवंगठित रमा डाक्टर की आज्ञानुसार मंत्र द्वारा अवाहन किये सर्प की भाँति खिंची चली तो आई पर मन ने कहा—स्नेह रिक्त शुष्क हृदय को सुसृत बनाने की उसमें क्षमता नहीं है।

प्रभात हुआ। चीं चीं कर उड़ती चिड़ियों को उसने पति की निद्रा भङ्ग होने की आशंका से कमरे से बाहर की ओर उड़ा दिया। विनोदराय के मुख पर सुर्य्य-किरणें न पड़े इसलिये पूर्व ओर की खिड़कियों को भी बन्द कर दिया। उसी समय प्रभात

के झीने प्रकाश में उसने देखा कि पति के पलङ्ग के ठीक सामने के मेज पर किसी स्त्री का चित्र सजाकर इस प्रकार रक्खा है कि निद्रा देवी के रूठते ही प्रथम उसी चित्र का दर्शन हो।

पन्द्रह वर्ष से पति द्वारा त्यागी नारी के हृदय पर चित्र ने एक और ताजा घाव कर दिया। विनोदराय के सम्बन्ध में उसने अनेक प्रकार की चर्चायें सुनी थी, पर अभी तक किसी दुश्मन ने भी उनके चरित्र पर आक्षेप नहीं किया था। 'फिर यह चित्र किसका है ?'

मुझे क्या ? जिसका हो उसका हो। सोंच रमा मुँह फेर कर बैठ गई।

जिज्ञासा तृप्ति चाहती है, रमा के मन ने भी पूर्ति चाही। ज्यों-ज्यों वह इस ओर से मन हटाने का प्रयत्न करती त्यों-त्यों वह और भी उसी ओर दौड़ने लगा। मन ने कहा देख न लो, हमारे अभाव को पूर्ण करने वाली कौन भाग्यशालिनी है। रमा ने चित्र उठा लिया और ध्यान पूर्वक देखने लगी।

यह कौन है ? लावण्यवती, नवयौवना, मदभरी आँखों को लिये पति प्रेम में पगी मुस्कराती है। कुछ देर तक जिज्ञासु दृष्टि से चित्र को देखती रही फिर एकाएक पास की कुर्सी पर धम से बैठ गई। उसकी विचार शक्ति इस तीव्र गति से चल रही थी कि उसे चक्कर सा मालूम हुआ तथा आँखों के सामने अंधेरा व लाल-पीला सा दिखने लगा। उसने दोनों हाथों को हथेलियों से अपने नेत्रों को मूँद लिया। थोड़ी देर बाद उसने नेत्रों पर से हथेलियाँ हटाई तो उसके मुँह से निकल पड़ा—'यह चित्र तो मेरा है।' फिरसे निश्चय करनेके लिए वह मेजके निकट गई, मन ने कहा तेरा चित्र यह नहीं हो सकता। आँखों ने कहा कि प्रत्यक्ष

कैसे झूठ हो सकता है? यह चित्र पन्द्रह वर्ष पूर्व उसके यौवन-अवस्था का है यह सत्य है।

चित्र के समक्ष दो तीन दिन पहिले के कुम्हलाये हुये गुलाब के फूल बिखरे पड़े थे। तो क्या यह नित्य प्रति इस चित्र की फूलों द्वारा पूजा करते हैं? रमा मन को स्वस्थ कर इस बात का उत्तर लेना चाहती थी कि उसके पहिले ही कमरे में एक विद्यार्थी ने प्रवेश कर कहा—'डाक्टर साहब आये हैं।'

रमा पलङ्ग के नजदीक एक कुर्सी पर बैठ गई। डाक्टर आकर दूसरी कुर्सी पर बैठ गया। कुछ देर तक वह विनोदराय के मुख की ओर एकाग्र दृष्टि से देखता रहा, फिर सर, हाथ तथा नाड़ी की परीक्षा कर हृदय की गति का निरीक्षण कर हँसते हुये कहा—'ज्वर काफी कम हो गया है।'

'परन्तु अभी बेहोशी नहीं गई है?' रमा ने भर्राए हुये कण्ठ से हृदय के अन्दर के दुःख को प्रकट किया।

'बीमार तो पूर्ण निद्रा में सो रहा है। निद्रा से बीमारी का नाश होता है।' डाक्टर ने कहा।

'ऐसा'! रमा ने उत्साह पूर्वक पूछा।

'अवश्य। एक दो दिन इस प्रकार रहा तो स्वास्थ्य लाभ जल्दी ही कर लेंगे। परन्तु मालूम होता है कि सारी रात आपने जागरण किया है, दिन में किसी को रोगी के पास बैठा कर आप सो जाइये।

'इनकी तबियत अच्छी हुये बिना मुझे नींद नहीं आवेगी।'

एकाएक विनोदराय ने आँखें खोल दी। उन्होंने कमरे के अन्दर डाक्टर शिक्षक तथा कुछ विद्यार्थियों को देखा, कारण कुछ समझ में न आने पर पूछा—'आप लोग यहाँ क्यों एकत्रित हैं?'

कमजोर स्वर से बोलते हुए विनोदराय को डाक्टर ने रोक कर कहा—'आप बुखार से बहुत दुर्बल हो गये हैं, अधिक न बोलें।'

तुरन्त ही एक झटके के साथ विनोदराय ने करवट बदली, उन्हें अपने नित्य क्रम में कुछ नवीनता अनुभव हुई। करवट बदल कर सामने की ओर कुछ देखना चाहा, परन्तु उनके और मेज के बीच यह परदा किये कौन स्त्री है। हलके प्रकाश में पूर्ण सावधानी से उसकी ओर देखने लगे।

विनोदराय को भास हुआ कि वह स्वप्न देख रहे हैं। यह मुख तो आज पन्द्रह वर्षों से दिखाई नहीं दिया था, फिर आज कैसे? वह सोचने लगे कि यह सचमुच रमा है? उन्होंने अपनी आँखें जोर से मूँद ली। क्या चित्र ने विराट रूप धारण कर लिया? क्या नित्य के दर्शन और पूजन से भ्रम वश आँखें दूसरे को ही रमा समझ रही हैं?

रमा का अङ्ग अङ्ग तथा रोम रोम काँप उठा। पैंतीस छत्तीस वर्ष की उम्र—जो जवानी के दिवसों से ही कठिन संयम और साधना में बीता उसमें यह कंपन क्यों? वह अवाक हो उठी, उसे शीतलता का अनुभव हुआ।

कुछ क्षण बाद उसकी चेतना लौटी। किस लिये वह सिर्फ डाक्टर के बुलाने पर यहाँ चली आई? बेहोश पड़े विनोदराय ने तो शायद ही उसको बुलाया हो। फिर वह वापस क्यों न लौट जाय?...एकाएक विनोदराय ने आँख खोला तो उनकी आँखें रमा की आँखों से मिलती हुई उसके मुख पर जा स्थिर हो गईं। रमा ने अपनी आँखों को पति की आँखों से अलग किया, परन्तु पलङ्ग पर पड़े रमा के हाथ पर दुर्बल विनोदराय का जो हाथ आ पड़ा उसे खींचने की तीव्र इच्छा होते हुये भी

वह खींच न सकी। वह संकोच में डूब गई। एकत्रित सभी ने यह दृश्य देखा। रमा की आँखे फिर पति-मुख ओर दौड़ पड़ीं। उसके हाथों पर हाथ रख कर लेटे विनोदराय के आँखों से आँसू की प्रबल धारा अविरल गति से बहने लगी। रमा का हृदय सागर की तरङ्गों के समान उछल रहा था, उसने मन को कठोर किया, और दूसरे हाथ में रुमाल लेकर पति के आँसू पोछ डाले।

विनोदराय ने हाथ को पकड़ अपने माथे के नीचे दबा लिया और थोड़ी देर बाद निद्रा देवी के अधीन हो गये। रमा ने अपने दोनों हाथों को उसी प्रकार रहने दिया।

डाक्टर, शिक्षक और शिष्यों ने इस दृश्य में कोई बाधा उपस्थित नहीं किया।

❀ ❀ ❀

विनोदराय का स्वास्थ्य तेजी के साथ सुधर रहा था। पलङ्ग पर तकिये के सहारे बैठ आने वालों से अच्छी तरह बात चीत कर सकते थे। फिर भी उनके और रमा में आवश्यकतानुसार कम से कम बातें होती थीं।

'औषधि लाऊँ ?' रमा पूछती।

'दे दो !' विनोदराय उत्तर देते।

'दूध पीजियेगा ?' रमा प्रश्न करती।

'हाँ !' एकाक्षरी उत्तर होता।

'क्या खायेंगे ?'

'डाक्टर ने जो बतलाया हो !'

'डाक्टर ने किसी चीज के लिये रुकावट नहीं की है।'

'तो जो रविशंकर की इच्छा हो बना ले।'

'रसोई रविशंकर को नहीं बनाना है।'

'तब ?'

'मैं बनाऊँगी ।'

जमीन की ओर देखते हुये विनोदराय कहते—"जो बनाओगी रुचेगा।'

आदि उपर्युक्त आवश्यक सीमित ही बातें होती थी। आँख बचाकर एक दूसरे को देख लेते थे, इस चोरी में कभी कभी दोनों की दृष्टि क्षणमात्र के लिये एकाकार हो जाती, यह मूक आँखे दिल के अन्दर के छिपे दुःख को देख लेती थीं। पश्चाताप के जो भाव वाणी द्वारा नहीं कहे जा सकते थे वह परस्पर प्रकट हो जाते।

वाणी द्वारा भाव प्रदर्शित करने की शक्ति निर्बल हो गई थी, फिर भी दोनों को अनेक बातें एक दूसरे से कहनी थीं। बीते दिनों की बातें याद कर एकत्रित की जा रही थीं। फिर भी पन्द्रह वर्ष के स्वेच्छा से किये वियोग के अन्त समय क्या क्या कहना और न कहना के उधेड़-बुन में दोनों व्यस्त थे।

पलङ्ग के निकट आराम कुर्सी पर बैठे दैनिक पत्र पढ़ते हुए विनोदराय अपने स्वास्थ्य में बल और स्फूर्ति का अनुभव कर रहे थे। थोड़ी दूर पर एक ओर बैठी रमा अपने बालों को संवार रही थी। उसे भान ही न हुआ कि आराम कुर्सी पर से उठ विनोदराय कब उसके निकट आकर बैठ गये। परन्तु निकट में बैठा मनुष्य अधिक समय तक अपने को छिपाये नहीं रह सकता, रमा ने बगल की ओर देखा तो उसकी छोटी सतरञ्जी के ऊपर विनोदराय बैठे एकाग्र दृष्टि से उसकी ओर देख रहे थे। वह खिसक जमीन पर बैठ गई।

'लाओ मैं बाल सवाँर दूँ।' कहते हुए विनोदराय ने रमा के हाथ से कंघी ले ली। रमा की आँखे विस्तृत हो उठीं, उसने कहा,

'मुझे यह अच्छा नहीं लगता।' पर विनोदराय ने कोई प्रतिउत्तर नहीं दिया और रमा के सीधे-सादे बालों को अच्छी तरह सँवार एक काकुल में परिणित कर कहा—'इसी प्रकार रखना' कह कर रमाके हाथोंमें कंघी दे दी और उसके मुख की ओर ध्यान दे कर देखने लगे।

रमा का हाथ उसी प्रकार यथा स्थान पड़ा रहा। उसे याद आया कि इस पन्द्रह वर्ष के वियोग का मूल कारण क्या यही काकुल नहीं है? विगत पन्द्रह वर्ष पूर्व का वह दिन उसके आँखों के समक्ष मूल रूपमें आकर खड़ा हो गया। आधुनिक युग व में पली युवतियों के बाल, वस्त्र, वाणी को देख जगत को उनके आचरण के प्रति कुछ न कुछ टिप्पणी करने का स्वभाव सा हो गया है। स्त्रियों की सम्पूर्ण कलाओं में उन्हें अमर्य्यादा का ही भूत दिखलाई देता है। यौवन के प्रवाह में बहती रमा बाल को सुन्दर रूप से सँवार माथे के ऊपर से कलामय गुच्छों को नित्य रूप देती। आधुनिक लोगों के लिये यह कोई नवीनता न थी बल्कि यह एक चलन सी थी। इस नवीनता को स्वच्छंदता की दृष्टि से वृद्धजन देखते थे। और रमा उन लोगों के हर समय के टीका का विषय बन गई थी। विनोदरायके साथ विवाह होने के पहिले से ही रमा का परिचय उनसे था, दोनों की योग्यता ने ही परस्पर एक दूसरे को प्रभावित कर एक सूत्र में बँधने के लिये बाध्य किया था।

परन्तु युवक विनोदराय नित्यप्रति रमा की टीका सुन नैतिक आवेश में आ गये। अधिकतर नवविवाहित पति अपनी पत्नियों को सुधार कर योग्य बनाने को लालायित रहते हैं। विनोदराय ने भी निश्चय किया कि रमा को शासन के अंकुश द्वारा समाज के दृष्टि में संस्कारित बना दें।

सुन्दर शृंगार कर हँसते मुख रमा पति के निकट प्रशंसा पाने की आशा लिये जा पहुँची। विनोदराय को रमा का शृंगार अद्भुत जंचा और वह प्रभावित हो उठे; पर पूर्व निश्चय के अनुसार मुख पर अरुचिता का भाव लाकर कहा—

'रमा! इस प्रकार बाल सँवारना छोड़ दो।'

'क्यों?'

'मुझे नहीं रुचता।'

'लोगों की टीका से भयभीत हो उठे?'

'मैं किसी की टीका से नहीं डरता। वादाविवाद बिना ही जैसा मैं कहता हूँ करो।'

'यदि ऐसा न कर सकूँ तो?'

विनोदरायका मन और मस्तिष्क क्रोधसे भर उठा। मन ने कहा—रमा को लोग स्वच्छन्दी कहते हैं तो इसमें गलत ही क्या है। उन्होंने कहा, 'जैसा मैं कहता हूँ वैसा न करने से साथ साथ रहना न हो सकेगा।' वह क्या जानते थे कि उपरोक्त इतनी सी बात का परिणाम १५ वर्ष का दम्पति को वियोग सहना होगा।

रमा का हृदय भी दृढ़ था। मान भङ्ग कर पति गृह में वास करना युवती रमा के अभिमान को स्वीकार न था।

'ठीक है।' कह रमा ने कदम घरसे बाहरकी ओर बढ़ा दिया।

'कहाँ जा रही हो।' विनोदराय ने पूछा।

'पिता के घर।' रमा ने दृढ़ स्वर में उत्तर दिया।

'वहाँ जाने पर मैं बुलाऊँगा नहीं!' विनोदराय ने चेतावनी दी।

'आपके बिना बुलाये मैं आने की नहीं।' रमा ने दृढ़ता से जवाब दिया।

रमा नैहर चली गई। दोनों विरही हृदय एक दूसरे से मिलने

के लिये प्रतिक्षण आतुर रहते थे। परन्तु झूठे अभिमान के कारण कोई भी एक दूसरे के सामने झुकने को तैयार न था। वियोग स्थाई हो गया, और इस प्रकार जीवन का पन्द्रह वर्ष प्रेम का भग्न खण्डहर सा बना रहा।

रमाको सम्पूर्ण विगत बातें याद हो उठीं। आँखोंके आगे इस प्रसंग के प्रत्येक दृश्य क्रम से चित्रवत् दिखाई पड़ने लगे। रमा के समझ में नहीं आ रहा था कि विनोदराय बीते अप्रिय प्रसङ्ग की याद दिला रहे हैं अथवा बीते जीवन के सरस घड़ियों को निर्जीव बनाने के कारण पश्चाताप कर रहे हैं। वह उठकर वहाँ से दूसरे कमरे में तेजी के साथ चली गई। और वहाँ दिल खोल कर खूब रोई। रोने से मन थोड़ा हलका हो उठा और पन्द्रह वर्ष पूर्व की प्रतिज्ञा याद हो आई। उसने अपने वस्त्र पहिन विनोद-राय के निकट आकर कहा—

'मैं जा रही हूँ।'

'कहाँ?' आश्चर्य भरे स्वर में विनोदराय ने पूछा।

'पिता के घर।' रमाने दृढ़ता भरे स्वर में कहा; किन्तु अंदर ही अन्दर उसका हृदय काँप रहा था।

विनोदराय के मुख पर एकाएक आई उदासी को रमा ने देखा। अपमान सहकर भी पति शरण में रहने की इच्छा उसके हृदय के एक कोने में मौजूद थी। पर न तो उसे बुलाया था न अब रहने के लिये उसने आग्रह किया, ऐसी अवस्था में रहना क्या सम्भव था? फिर किसलिये आज वह पन्द्रह वर्ष से पालन की हुई प्रतिज्ञा को तोड़े?

विनोदराय ने कहा 'हमारी परिचर्य्या और सेवा कर मुझे जीवन दिया है इसके लिये आभारी हूँ।'

इस प्रकार अभार के कृत्रिम प्रदर्शन ने रमा के निश्चय को

और भी दृढ़ता दी। उसने कहा—'गाड़ी का समय हो रहा है।'

'तुम्हें जाने देनेकी मेरी इच्छा नहीं है !' विनोदरायने कहा।

'जो काम हो कहिये।' रमा ने सहज ही व्यङ्ग कर आगे जाने के लिये पैर बढ़ाये तो बढ़ नहीं रहे थे वे; मालूम होता था कि सारे ब्रह्माण्डका भार उसमें आ गया है। किसी ने उसमें बेड़ियाँ डाल रक्खा है।

'मैं जा रही हूँ।' रमा ने पति की ओर मुड़कर कहा।

'तुम जाओ।' विनोदराय ने उत्तर दिया।

उत्तर सुन रमाके पगों में वेग उत्पन्न हुआ। वह तुरन्त कमरे के दरवाजे से बाहर हो गई।

परन्तु उसके वस्त्रों को कौन खींच रहा है? उसका वस्त्र किस वस्तु से उलझ पड़ा? वह पीछे घूमी, उसके पीछे मुड़ते ही दो बलिष्ठ हाथों ने उसे अपने अंक में भर लिया। विनोदराय के हँसते मुख को रमा ने देखा।

'क्या कर रहे हैं? छोड़िये!' रमा प्रेम समुद्र के हिल्लोरों में डुबकियाँ लेती कृत्रिम क्रोध मिश्रित भाषा में बोली।

'क्यों छोड़ूँ?' विनोदराय ने सुखमय संसार में विचरण करते हुए पूछा।

'मुझे जाना है।' रमा ने रोमांचित हो उत्तर दिया।

'मेरे हाथ से छूट सको तो चली जाओ। देखती नहीं ईश्वर ने नवजीवन दिया है।' कह विनोदराय ने रमा को बलपूर्वक बाहू-पाश में लपेट आलिङ्गन किया।

रमाका निश्चय इस प्रेमके प्रवाह में बह गया, उसने बगलमें दबी छोटी गठरी को वहीं जमीन पर गिर जाने दिया, इतना ही नहीं अपने शरीर को भी विनोदराय की इच्छानुकूल उपभोग के लिये ढीला कर दिया। उसे अनुभव हो रहा था कि पन्द्रह वर्ष

की कठिन तपस्या आज सफल हुई जिसका प्रतिकार उसे पति इस रूप में दे रहा है।

दम्पति को इस प्रकार क्रीड़ा करते देखकर कोई पागलपन कहे या हँसे ; पर चालीस के वय के आस-पास विचरण करने वाले प्रगल्भ प्रेमियों की पागल-क्रीड़ा गम्भीर एकान्त चाहती है ताकि कोई हँसी न उड़ाये।

विजय किसकी ...?

प्राचीन समय की बात है, जब कि वीर पुरुषों के मन को जगत विजयी होने की आकांक्षा सदा व्यथित किये रहती थी। राजा महाराजा बनने को लालायित रहता और महाराजा चक्रवर्ती होने का सतत प्रयत्न करता था।

महाराजाधिराज त्रिभुवनपाल ने विश्व में अपनी विजय-कर कीर्तिपताका फहराई। उनकी वीर-हुँकार से इन्द्रासन हिल उठता और दिग्पाल भी डोल जाते थे। महा बलवान अजान-बाहू त्रिभुवनपाल ने अपनी अजीत अक्षौहिणी सेना द्वारा समस्त भूतल पर विजय प्राप्तकी थी। उनका नाम सुनकर दूर दूरके राजे थर थर काँपने लगते थे। त्रिभुवनपाल चक्रवर्ती तो थे, परन्तु शास्त्र सम्मत राजसूय यज्ञ कर तथा देश-विदेश के राजाओं का मुकुट अपने चरणों से स्पर्ष कर और उनकी सभा मध्य देवों के बीच इन्द्र समान सुशोभित नहीं हुए थे। यही अभिलाषा उनके मन में जागृत हुई।

उन्होंने राजसूय यज्ञ प्रारम्भ किया। नदी पार के भी राजा सम्मिलित हो सकें इतना समय रक्खा गया। सभी राजे यज्ञ में सम्मिलित हो सामन्त बने। किसी में भी साहस न था कि महा-राजाधिराज त्रिभुवनपालकी आज्ञाका उलंघन कर सके। सन्तोष पूर्वक चक्रवर्ती त्रिभुवनपाल ने अपने महामात्य को राजसूय यज्ञ

की पूर्णाहुति के लिये शुभ दिन निश्चय करने को कहा। पूर्णाहुति के दिवस सभी आधीन राजाओं ने भेंट ला ला कर चरणों में अर्पण की थी। फिर भी अनुभवी महामात्य ने सिर हिला कर अपना विरोध प्रगट किया।

'क्यों तुम अपना विरोध प्रगट कर रहे हो?' बहुत वर्षों से अपने ही ध्वनि की प्रतिध्वनि सुनने के अभ्यासी त्रिभुवनपाल ने कुछ क्रोधयुक्त हो प्रश्न किया।

'महाराजाधिराज एक बाधा है!' हाथ जोड़ महामात्य ने कहा। सबल राजा महामात्य पर भी पूर्ण शासन करता है।

'क्या बाधा है?'

'एक राजा ने उपस्थित होना अस्वीकार कर दिया है।'

'ऐसा...यह कौन है? मैं उसे अभी ही मिटा दूँ।'

'भद्रपुर का सुकेतू। उन्होंने लिखा है कि संसार के किसी भी महाराजा की अधीनता उसे स्वीकार नहीं है।' महामात्य ने निवेदन किया।

राजराजेन्द्र त्रिभुवनपाल हँसने लगे, उन्होंने पूछा—

'तुम क्या कहते हो? वह तो अपना आश्रित सा है।'

'यह पत्र है, अपने आश्रय को वह अस्वीकार करता है।'

'अरे! क्या भद्रपुर भी राजा कहा जा सकता है? पाँच-पचीस गाँव की ठकुराहट...।'

'जी! किन्तु क्या वह आपको राजस्व देता है?'

'वह तो गरीब समझ कर उससे नहीं माँगा था। वह क्या दे सकता है?'

'एक घोड़ा अथवा एक कृपाण जैसी छोटी वस्तु भी जब तक भेंट न करे तब तक वह आपके अधीन कैसे माना जा सकता है।'

'मेरे प्रति तो वह यथेष्ट सम्मान रखता है। हम और उसके

पिता दोनों साथ ही धनुर्विद्या सीखते थे। इसलिये हमने राजस्व नहीं लेना चाहा। वह अपना ही है ऐसा मैंने मान लिया था।'

'वह अपना है। परन्तु उसने तो आपकी आधीनता स्वीकार नहीं की है।'

'मैं उसे बुलाकर स्वीकार करा देता हूँ।'

'वह एकदम इन्कार करता है। वह पराजित राजा नहीं है।'

'ऐसा ? इसके लिये क्या वह युद्ध चाहता है। उसके समूचे राज्य में जितने मनुष्य नहीं होंगे उतने हमारे एक तबेले में घोड़े हैं। वह क्या लड़ेगा ? उसे बुलवाओ।'

महाराज के राज्य के पड़ोस में एक छोटा सा न गिनने लायक भद्रपुर नाम का राज्य था। उसका युवा राजा सुकेतु महाराज त्रिभुवनपालके अधिक परिचयमें था। कारण कि सुकेतु के पिता और त्रिभुवनपाल मित्र थे। मित्रता के स्नेह में त्रिभुवन-पाल महाराज के मन में भद्रपुर राज्य के लिये इतना सम्मान था कि संसार के दूसरे देशों को आधीन करने पर उन्हें स्वप्न में भी यह विचार न आया कि मुट्ठी में समा जाने वाला भद्रपुर का राज्य अधीन होना बाकी है। यह राज्य अपनी महत्ता अलग ही स्वीकार करता है। भद्रपुर राज्य तो जीता ही हुआ है यह मान कर महाराज त्रिभुवनपाल ने सहज ही इधर लक्ष नहीं किया। यह भद्रपुर की छोटी सी ठकुरात महाराज त्रिभुवन पाल के चक्रवर्तीत्व विजय को पूर्ण नहीं होने देती थी। उस ओर दृष्टि डालने पर महाराज को अपना अपमान लक्षित हुआ। अगर सुकेतु ने यह बाधा उपस्थित न किया होता और यज्ञ में न भी आया होता तो भी महाराज का चक्रवर्तीत्व अपूर्ण न होता। उसका राज्य राज्य में गिनने के लायक भी न था।

किन्तु राजसूय यज्ञ के सम्बन्ध में लिखे गये निमन्त्रण को अस्वीकार करने के पश्चात भी महाराज चक्रवर्ती बन जाँय यह सम्भव न था। प्रत्येक व्यक्ति यह कह सकता था कि समूची पृथ्वी जीता परन्तु भद्रपुर न जीत सके। यह कैसे होने दिया जा सकता था। महाराज ने सुकेतु को बुलवाया।

यौवन से परिपूर्ण सुकेतु अकेला घोड़े पर सवार राजदरबार में उपस्थित हुआ। महाराज त्रिभुवनपाल ने उसे अपने एकान्त आवास में बुलाया। सिंहासन पर विराजते प्रतापी महाराज के सम्मुख हाथ जोड़े हुए सुकेतु खड़ा था उसने पूछा—

'महाराज ! क्या आज्ञा है ?'

महाराज के मन में क्रोध व्याप्त था। उसे दबाते हुए उन्होंने कहा—'क्या तुम्हें आज्ञा पालन करना है ? बैठो।'

सुकेतु महाराज के पैरों के निकट बैठ गया। महाराज विचार ग्रस्त हो उठे। इस विनयी सुकेतु ने ही उस उद्दण्ड पत्र को लिखा है ?

'सुकेतु !' महाराज ने थोड़ा रुक कर बात प्रारम्भ की।

'जी !'

'यह पत्र तुमने लिखा है ?'

'जी !' सुकेतु की गर्दन उत्तर देने के साथ कुछ कड़ी हो उठी।

'यहाँ तुम आज्ञा मानने का ढोंग कर रहे हो।'

'नहीं महाराज ! सुकेतु के तरीके मैं आपकी सभी आज्ञाओं को मानने को प्रस्तुत हूँ।'

'फिर ?'

'सुकेतु आपका सेवक है। किन्तु भद्रपुर का राजा आपके समानता का ही है।'

'यह दोनों क्या पृथक पृथक हैं ?'

'आप नहीं समझ पा रहे हैं ?'

'मैं भद्रपुर के राजा को आज्ञा देता हूँ कि...'

सुकेतु जहाँ बैठा था वहीं खड़ा हो गया। उसका खड्ग की मूंठ पर हाथ जा पहुँचा, किन्तु मूंठ पर उसी प्रकार हाथ धरा छोड़ वह गरज उठा—

'भद्रपुर का राजा अपने हृदय के सिवा और किसी की आज्ञा का पालन नहीं करता !'

'अरे बच्चे ! तुम यह क्या मूर्खताई की बातें कर रहे हो ?'

'बालक समझ कर अगर आप बातें करेंगे तो मैं अपनी भाषा बदल दूँगा महाराज।'

त्रिभुवनपाल महाराज की आँखे अंगार हो उठीं। बिना अस्तित्व का एक मामूली ठाकुर जो कि राजाओं से भी तुच्छ है इस प्रकार जगत-विजेता से गर्व करे। क्या वह क्षमा योग्य है ? फिर भी उदारता का विचार कर महाराज ने पूछा—

'तब तो तुम यज्ञ में नहीं आओगे ?'

'क्यों नहीं ? आऊँगा और मुझ से जो सेवा हो सकेगी करूँगा।'

'तब तुमने पत्र में अस्वीकारता क्यों लिखी है ?'

'वह भद्रपुर का राजा तो नहीं आयेगा न !'

'यहाँ तुम पराधीन राजाओं की श्रेणी में नहीं बैठोगे, यह सत्य है ?'

'जो राजस्व देता हो वह बैठे। मैं नहीं बैठूँगा।'

'मुझे तुम्हें आधीन करना ही है।'

'यह असम्भव है। भद्रपुर का राजा दूसरे की सत्ता स्वीकार नहीं करता।'

'कारण ?'

'संसारमें चक्रवर्ती बननेका किसीको भी अधिकार नहीं है।'

'मुझे भी नहीं।'

'नहीं।'

'सुकेतु ! बहुत ही झुकना पड़ेगा। तुमसे बहुत ही सबल-सबल राजाओं ने मेरा चरण-स्पर्ष किया है।'

'वह भद्रपुर का सुकेतु नहीं बन सकता। आपका चरण भले ही स्पर्ष कर लूँ परन्तु महाराज त्रिभुवनपाल के चरण पर लोटनेवाला राजा मैं नहीं हूँ। इन राजाओं के वेष को सुसज्जित किये गुलामों के ऊपर सत्ता दिखलाने का शौक आपको भी शोभा नहीं देता।'

'तुम आधीनता स्वीकार नहीं करते ?'

'नहीं।'

त्रिभुवनपाल ने ताली बजायी। पाँच हथियार बन्द मनुष्य इधर उधर से टूट पड़े। आज्ञा हुई, 'कैद करो सुकेतु को।'

परन्तु सुकेतु बिजली की चमक वाली चपलता से वहाँ से छूट निकला। क्या हुआ इसका समाचार प्रसारित होने के पहिले ही वह घोड़े पर सवार हो वहाँ से अदृश्य हो गया।

त्रिभुवनपाल खिलखिला कर हँस पड़े। यह मूर्ख-युवा मरने वाला है क्या ? इसके राज्य सीमा के चारों ओर तो त्रिभुवन-पाल का राज्य है। किस ओर यह भाग सकेगा ?

❀ ❀ ❀

पूर्णाहुति का दिन निश्चय कर त्रिभुवनपाल ने एक छोटी सी सेना भद्रपुर को विजय करने के हेतु भेजी। त्रिभुवनपाल के पास तो अनेक अक्षौहिणी सेनायें थीं। उनमें से पाँवप्यादे, घोड़सवार, गजसवार, रथ सवार अनगिनती थे। उसमें विश्व-

विजयी महारथी, अतिरथी योधाविश्व के छटे हुए । उसका एक अल्पांश भी सपूर्ण भद्रपुर को विजय करने के हेतु अधिक था।

भद्रपुर में सेना तो न थी। शस्त्र संचालन कर लड़ सकें ऐसे वीर भी वहाँ नहीं थे। सुकेतु ने भद्रपुर का द्वार बन्द कर दिया और थोड़े से सैनिकों के साथ दुर्ग की रक्षा प्रारम्भ की। त्रिभुवनपाल की सेना ने दुर्ग पर चढ़ाई की। सुकेतु की बाणों की मार ने उन्हें बींध डाला। नीचे मुख किये उदास मुख लौटते हुये सैनिकों की पग धूलि महाराज त्रिभुवनपाल ने अपने दुर्ग से देखी और उन्होंने महामात्य को आज्ञा दी—

'पता लगाओ, सुकेतु बन्दी हुआ ? उसे सीधे यहीं लाओ।'

'जो आज्ञा महाराज!' कह हाथ जोड़ प्रधान ने प्रस्थान किया।

किन्तु वह सुकेतु के बदले अपने सेनापति को ही साथ लाया। सेनापति की आँखे पृथ्वीसे ऊपर की ओर न उठ सकीं।

'सुकेतु कहाँ है ?' महाराज चीख उठे। सम्पूर्ण महल उनके चीख से गूँज उठा।

सेनापति का कण्ठ बन्द हो गया। महामात्य ने भी कम्पित स्वर में उत्तर दिया—

'महाराज! वह बन्दी नहीं हुआ।'

'तब यह लौट कर कैसे आया।'

'सेना हार गई।'

'फिर यहाँ समाचार ने केलिये सेनापति जी लौट आये हैं ? इसका खड़ग छीन लो।'

विजय-व्यसनी-वीर विजय के ही पुजारी होते हैं। विजय ही उनकी आराध्य देवी है। खड़ग लौटाने के पूर्व ही सेनापति ने उसे अपने वक्ष में भोंक लिया। रुधिर-रंजित अंतिम श्वास

लेते हुये सेनापति पर महाराज ने साधारण दृष्टि डालते हुये आज्ञा दी—

'दूसरी बड़ी सेना भेजो।'

सेना को प्रत्येक क्षण प्रस्थान के लिये प्रस्तुत रहना चाहिये। महाराज की आज्ञा के साथ ही सैन्य समुदाय ने उमड़ कर भद्रपुर को चारों ओर से घेर लिया।

प्रभात हुआ, दोपहर बीता, शाम आई तब भी सुकेतु के बन्दी होने का समाचार प्राप्त न हुआ। महाराज त्रिभुवनपाल ने सम्पूर्ण रात्रि जागरण किया। प्रातःकाल किरणों के स्फुटित होने के साथ ही वह झरोखे पर जा खड़े हुये, किन्तु भद्रपुर के पथ पर कोई आता दिखलाई न पड़ा।

'सब क्या कर रहे हैं ?' महाराज बड़बड़ा उठे। सैनिकों की शिथिलता उन्हें असह्य हो उठी। अपने एक विश्वासी चर को बुला कर आज्ञा दी—

'उड़ते हुये जाओ, और शाम होने के पूर्व ही भद्रपुर का समाचार लाओ।'

अभिनन्द कर चर घोड़े पर सवार हो उड़ चला। मध्याह्न की सुख निद्रा न ले सकने के कारण महाराज शाम के पूर्व ही बाहर कोष्ठ में आ बैठे। इतने में ही प्रातः वाले चर ने आ कर अभिवादन किया।

'क्यों ? क्या समाचार लाए।'

'महाराज अपनी सेना बड़ी हो तेजी से जूझ रही है, परन्तु......' उससे आगे नहीं कहा गया।

'परन्तु...क्या ? बोलो !'

अशुभ समाचार लाने वाले को मृत्यु दण्ड प्राप्त होने वाला भाव महाराज के मुख पर स्पष्ट प्रगट हो रहा था, फिर भी सेवक

चर को सूचना पूर्ण किये बिना छुटकारा भी तो न था।

'परन्तु महाराज! भद्रपुर का दुर्ग तो वज्रों द्वारा निर्माण हुआ मालूम होता है।'

'वज्रको भी मैं आज्ञा होते ही टूटता हुआ देखना चाहता हूँ!'

'वह तो होगा ही, किन्तु कुछ समय लगेगा।'

'दूसरे सेनापति को भेजो। जिसमें वेग नहीं वह कुछ नहीं कर सकता।'

सेनापति परिवर्तन हुये, एक नहीं अनेक बदले गये। पूर्णाहुति का दिन भी निकट आने लगा। किन्तु फूँक मारते ही उड़ जाने जैसा भद्रपुर का राज्य अपनी स्वतंत्रता का झंडा फहराता जा रहा था।

महाराज त्रिभुवनपाल का सम्पूर्ण शरीर क्रोधाग्नि रूपी दावानल से प्रज्वलित हो उठा। महत्व-हीन भद्रपुर के समक्ष अन्त में उन्हें संग्राम में भिड़ना पड़ेगा? जहाँ जहाँ और जब जब सेनापति असफल हुए हैं वहाँ वहाँ महाराज स्वयं अपनी सेना के विजय के लिये दौड़े थे। किन्तु वहाँ महाराजाओं का समानता था। ऐसे पाँच पच्चीस गाँव के नाम-मात्र राज्य के ठाकुरों पर स्वयं चढ़ाई कर उसे महत्त्व देना क्या अच्छा कहा जायेगा? नहीं! परन्तु महाराज ने उन सब प्रमुख वीर सेनापतियों के बल तथा कौशल की जिन्होंने अनेक बार विजय-मालायें वरी थीं; जिनकी चारो ओर प्रसिद्धी थी, परीक्षा ले ली थी। अब उन्हें स्वयं ही चढ़ाई करना बाकी था। इसके बिना अब छुटकारा न था।

महाराज त्रिभुवनपालके रणभूमि पर आते ही उनके सैनिकों में उन्माद छा गया। भद्रपुर के ऊपर चौगुने जोर से हमला हुआ। दुर्ग की दिवालें जहाँ तहाँ टूट गईं। परन्तु वह टूटने के

साथ ही तुरन्त मरम्मत होती जाती थी। महाराज त्रिभुवनपाल द्वारा संचालित सेना के प्रथम चढ़ाई में ही दुर्ग के नष्ट हो जाने की आशा थी। किन्तु यह न हुआ, इससे क्रोध से व्याकुल हुये महाराज ने दूसरे दिन के लिये नये प्रकार के व्यूह-रचना का निश्चय किया।

प्रभात में शहनाई के मधुर स्वर के साथ ही रण-डंके की गूँजार भी दशो दिशाओं में गूँज उठी। भद्रपुर के मुख्य द्वार पर उन्मत्त पर्वता-कार हाथियों को ला कर खड़ा किया गया। इन हाथियों के पीछे एक विशाल-काय गजराज पर स्वयं महाराज त्रिभुवनपाल विराजमान हो सेना का संचालन कर रहे थे। उनकी आज्ञानुसार चार हाथियों ने अपने कुम्भ-स्थल से भद्रपुर के सिंहद्वार पर पूर्ण वेग से धक्का मारा। द्वार जर्जर हो उठा। महाराज की दूसरी आज्ञा हुई। हाथियों ने दूसरा धक्का मारा। क्षण भर पश्चात् द्वार धराशायी था। सेना ने हर्ष से जय-घोष किया। परन्तु जय-घोष की ध्वनि को अनन्त में विलय होने के पूर्व ही द्वार के खुले हुये भाग में से बिजली के प्रकाश की चपलता की तरह शस्त्र-सज्ज एक वीर अश्वारोही हाथियों के मध्य होता हुआ सेना में घुस गया। इस चपल-तुरङ्ग को सभी ने मार्ग दिया। मार्ग के अविरुद्ध करने वाले सैनिकों को वह यम का मेहमान बनाता जाता था। हर्षनाद शान्त हो गया। सेना का अग्रभाग अस्त व्यस्त होने लगा। महाराज इस अव्यवस्था का कारण जानने के लिये इधर उधर देख ही रहे थे कि उनके गज पर घोड़े ने टाप रक्खी। घोड़े पर रुद्र के तीन नेत्र जल रहे थे। वीर की दोनों आँखें और हाथ का चमकता कन्धे तक उठा भाला प्रलय की अग्नि समान चमक रहा था। त्रिभुवनपाल ने देखा कि साक्षात् मृत्यु सामने

खड़ी है।

उस वीर ने पूछा—

'महाराज! चक्रवर्ती बनना है?'

'सुकेतु?'

भय तथा आश्चर्य के सम्मिश्रण का अनुभव करते हुये महाराज के मुँह से हठात् ही उपरोक्त शब्द निकल गया।

'जी! उत्तर दीजिये। हाँ के साथ ही यह भाला सीने में होगा। ना पर मैं लौट जाऊँगा।'

महाराज हाँ अथवा ना कुछ भी नहीं कह सके। भाले की तीक्ष्ण धार और तेज चमक उन्हें भयभीत कर रही थी। एक क्षण के लिये ना कह जीवन बचा लेने की लालच मनमें उत्पन्न हुई। उसी समय उनके हाथी का ज्ञान लौटा। उसने सूँड़ ऊँचा कर बलपूर्वक झटका दे घोड़े और सवार दोनों को ही धराशायी कर दिया। सेना में चैतन्यता आई, उसने जमीन पर से उठते हुये सुकेतु को पकड़ लिया। महाराज त्रिभुवनपाल की विजय हुई। दुश्मन बन्दी हुआ। सुकेतु के पश्चात् कोई लड़ने वाला नहीं जान पड़ा। महाराज बन्दी को ले कर समूचे भद्रपुर में घूमे और नगर में अपनी दुहाई फेरी। ग्राम-जन भयातुर हो घर में बैठे रहे। राजधानी को लौटते हुये महाराज ने सुकेतु को अपने निकट बुलाकर पूछा—

'क्यों सुकेतु! अब तुम मेरे अधीन हुये की नहीं?'

'नहीं!' गर्विष्ठ सुकेतु ने अस्वीकारता दी।

'हाँ कहते ही मैं तुम्हारा राज्य तुम्हें लौटा दूँगा।'

'सुकेतु दान देता है लेता नहीं। अपरिग्रह का मैंने व्रत लिया है।'

'तुम हमारे बन्दी हो यह भूल तो नहीं रहे हो।'

'हाथ पैरों में बंधन होने पर भी सुकेतु किसी का बंधन अथवा किसी की आधीनता स्वीकार करने का मन में विचार लायेगा यह आप भूलकर भी न सोचियेगा महाराज।'

महाराज खिलखिला कर हँसे और बंदी को पिंजड़े में बंद करने की आज्ञा दी। विजयी महाराज विजय का डंका बजाते हुये अपने राजधानी लौटे। राज्य में आनन्दोत्सव मनाया जा रहा था। दूसरी प्रजाओं को परतन्त्र बनाने में अपना गौरव और पुरुषार्थ की महत्ता मानने का अभ्यास बहुत प्राचीन काल से चला आ रहा है।

❀ ❀ ❀

राजसूययज्ञ की पूर्णाहुति का दिन था। सभी माण्डलिक और आधीन मित्र-राजाओंने राजराजेश्वरके दरबारको प्रतिभा-युक्त बनानेके प्रयत्नमें अपनेको अनेक बहु-मूल्य साधनों से सुसज्जित कर दरबार में उपस्थित थे। मुहूर्त की घड़ी टल न जाय इसी हेतु यज्ञ-पुरोहित सभी को बार बार सम्बोधित करता था फिर भी यज्ञ की पूर्णता में एक विशेष कमी बाकी थी। भद्रपुर का सुकेतु लालच अथवा धमकी से भी अपने निश्चय से अभी तक नहीं डिगा था। वह महाराज त्रिभुवनपाल का स्वामित्व स्वीकार करने से हमेशा ही इनकार करता रहा। आज भी अंत तक उसने इनकार ही किया।

एक विशाल मैदानमें महाराज त्रिभुवनपाल उच्च सिंहासन पर विराज; छत्र चँवर तथा अनेक विभूतियोंसे विभूषित सूर्य्यके समान देदिप्यमान हो रहे थे। उनके पृष्ठ की ओर अनेक आमन्त्रित राजे सुसज्जित आसनों पर सुशोभित थे। राज्य के पदाधिकारी वर्ग और सेना को भी क्रम से उचित स्थान पर बैठने की व्यवस्था की गई थी। प्रजा को भी राज्य-सत्ता का वैभव

अवलोकनार्थ खुली छूट थी। लोग छोटी बड़ी टोली में झुण्ड के झुण्ड लगातार मैदान में एकत्रित होते जा रहे थे। मालूम हो रहा था कि नर मुण्डों का समुद्र उमड़ पड़ा है।

एकाएक जन कोलाहल शान्त हो गया। अपमानित-राजा सुकेतु का लौह पिंजड़ा घसीट कर सभा स्थल में लाया गया। महाराज के इंगित करने पर सुकेतु को बाहर निकाला गया। म्लान सूखे हुए मुख में केवल आँख मात्र जीवित चमक रही थी। उसके हाथ और पैर मजबूत हथकड़ी और बेड़ी के बंधन में जकड़े थे। पिंजड़े से बाहर निकलने के कारण बेड़ियाँ झनझना उठीं।

महाराज ने बंदी को सम्बोधित करते हुए कहा—

'सुकेतु! प्रजा को तुम पर दया आती है।'

'मेरे ऊपर दया? किस कारण? दया तो आप पर आनी चाहिये।'

'मेरे पर दया, क्यों?'

'आपने सत्ता के वृक्ष का बीजारोपण किया है। आप चक्रवर्तीत्व रूपी भूत के आधीन हैं। जिसे यह पिशाच पकड़ता वह मनुष्य नष्ट हो जाता है।'

'मैं तुम्हें एक बार फिर समय देता हूँ। तुम हमारी आधीनता स्वीकार कर लो बदले में महाराज का वैभव प्राप्त होगा।'

'आप मुझे वैभव देनेवाले कौन? मेरा वैभव, मेरा साम्राज्य, मेरा सुख, सब मेरे साथ है।'

'मैं तुम पर इतनी कृपा कर रहा हूँ और तुम उससे इनकार कर रहे हो? संसार तुम्हें कृतघ्नी कहेगा।'

'स्वतंत्रता हरण कर वैभव का दान करते हुए, मानवीदान को अस्वीकार करने के कारण आप कृतघ्नी कह रहे हैं। मेरे

अस्वीकृति को आप अन्याय समझते हैं। आप भूल जाते हैं कि स्वतन्त्रता छीनते ही वैभव और सत्ता दोनों खोखले पड़ जाते हैं। प्राण हरण के बाद शरीर को जीवित रखने का उपदेश करना यह एक बहाना मात्र है। प्राण बिना क्या शरीर शृंगारित किया जा कर वर्षों तक सुरक्षित रक्खा जा सकता है? रण संग्राम में यह मृत हाड़ पिंजर का दबदबा भला विजय प्राप्ति कर सकता है?'

सुकेतु ने आधीनता स्वीकार न की। एकत्रित जन समाज विचारने लगा कि महाराज इतनी महत् कृपाकर अपनी सरलता का परिचय देते हुए उसकी मर्य्यादा की वृद्धि कर रहे हैं किन्तु यह मूर्ख युवक हाथ आये मणि को पाषाणवत फेंक रहा है। यह मिथ्या-अभिमानी अनुभव हीन मनुष्य व्यवहार बुद्धि से शून्य है।

कुछ देर बाद महाराज ने कहा—

'मैं बल पूर्वक तुम्हारा शीश झुकाऊँगा।'

'धड़ से अलग होने पर ही कदाचित ऐसा हो सके।'

'उसे भी करने में मुझे संकोच नहीं है। सिवा तेरे बालक को सामने देख कर ही रुक रहा हूँ।'

महाराज अतिशय दयालु, विचार शील और उदार हैं, ऐसी मान्यताने सभी उपस्थित प्रजा-जनको प्रभावित कर दिया। एक रूपवान कोमल आठ नौ वर्ष के बालक को सुकेतु के सामने ला कर दो सैनिकों ने खड़ा किया। बालक की आँखों में कोई अज्ञात भय वास कर रहा था। सुकेतु ने बालक पर दृष्टि डाली वात्सल्य की धार आँखों से छूट पड़ी। सब ने समझा की सुकेतु की दृढ़ता पिघल जायेगी। वह बालकके प्रेमवश हठ छोड़ देगा।

एकाएक सुकेतु के मुख के भाव गम्भीर हो उठे। उसने उच्च

स्वर में कहा—

'मैं इसे गुलामों के पुत्रों की श्रेणी में गिनना नहीं चाहता।'

'अरे मूर्ख! देख वह तेरी पत्नी खड़ी रुदन कर रही है।'

त्रिभुवनपालने उँगली से एक ओर इशारा किया। उधर एक कृश-वदना युवती आँसू भरी आँखों से सुकेतु को निहारती हुई खड़ी थी। सुकेतु अपनी प्रिय पत्नी की आँखों से आँख मिलने के पूर्व ही क्रोधातुर हो गरज उठा—

'अरे क्रूर! स्वतन्त्रता बेचते हुए पति की कल्पना तुझे रुला रही है अथवा आधीनता स्वीकार न करने वाले बन्दी बने पति का यह दृश्य?'

'जरा अपने निकट भी चारों ओर देख लो कि यहाँ कौन कौन सी वस्तुयें एकत्रित हैं?'

सुकेतु ने अपने चारों ओर दृष्टि डाली। एक खम्बे पर शूली की डोरी रक्खी थी, तथा एक ओर शूली चमक चमक कर अपने डरावने रूप को दिखा रही थी, एक ओर शरीर को कण-कण छेंदन कर देनेवाली काँटों की शैय्या रक्खी थी, और एक ओर अग्नि-चिता उच्च शिखाओं से प्रज्वलित हो रही थी। समूचा मानव समुदाय काँप उठा। सुकेतु चतुर्मुख मृत्यु का प्रत्यक्ष स्वरूप देख कर सहज ही विचार मग्न हो उठा। उसने समझा कि क्रम-क्रम कर मरने की अपेक्षा इन सुलभ साधनों द्वारा तो हृदय की गति को सहज ही बन्द किया जा सकता है। उसने आँख मूँद कर मन स्थिर किया। स्थिर हो, हँसते मुख उसने त्रिभुवनपालकी ओर दृष्टि कर कहा—

'महाराज! मुझे आपसे एक प्रश्न पूछना है?'

'पूछो, क्या है?'

महाराज ने समझा कि सुकेतु को मृत्यु-भय ने विचलित

कर दिया है।

'मान लीजिये कि इन मृत्यु के भयानक साधनों को देखकर मैं आपकी शरण आऊँ और आधीनता स्वीकार कर लूँ।' तब ?'

'बस मैं इतना ही चाहता हूँ।' महाराज ने उतावली से उत्तर दिया।

'किन्तु इस प्रकार मृत्यु-भीरु कायर पुरुष पर आपको स्वामित्व का भोग भोगते हुए लज्जा नहीं आती ?'

'इसमें लज्जा की कौन सी बात है ?'

'बह्मान्ध-राजा ! थोड़ा विचार करो। मैं तुम्हारे आधीन न होता हुआ तुम्हें पूज सकता था। किन्तु आधीन होने पर अपने अंतःकरण से नित्य ही तुम्हें धिक्कारता रहूँगा। यह कभी नहीं हो सकता; मृत्यु भी मुझे पराधीन नहीं बना सकती।' सुकेतु ने दृढ़ता से जोशीले शब्दों में कहा।

त्रिभुवनपाल का क्रोध सीमोलंघन कर गया। बल के प्रभुत्व में दलील की आवश्यकता नहीं होती। सत्य बात भी उसे तकरार ही जान पड़ती है। उन्होंने मेघ गर्जन किया—

'झोंक दो इस दुष्ट को चिता में।'

क्रोधावेश में वे आगे एक शब्द भी न बोल सके। उनके सेवक आज्ञा पालन को आगे बढ़े। सुकेतु के आँखों की ज्योति ने उन्हें निकट आने से रोक दिया। बेड़ियों की खड़खड़ाहट के मञ्जुल-गान बीच वह चिताकी ओर बढ़ा और अत्यन्त स्थिरता पूर्वक उसने अग्नि कुण्ड बीच एक पैर रख दिया।

सभी की स्वांस रुँध गई। सुकेतु ने दूसरा कदम उठाया और गगन चुम्बी अग्नि शिखाओं बीच समा गया। मानव समुदाय भयंकर चीख से चित्कार उठा। दूसरे क्षण लोगों ने आँखे मूँद लीं।

परन्तु महाराज त्रिभुवनपाल की दृष्टि चिता से नहीं हटी। चिता की चिनगारियों में उन्होंने सुकेतु को उछलते हुए देखा। अग्नि की प्रत्येक शिखाओं में सुकेतु को 'प्रसन्न-मुख देख रहे थे। चिता के प्रत्येक भड़कन में छोटा युवक सुकेतु पहले के ही भाँति रमण करता दिखलाई पड़ रहा था। काले घुमड़ते हुए बादल जहाँ तहाँ उड़ कर फैलते हुए सुकेतु के सेना समान जान पड़ते थे। वह अपनी प्रतिष्ठा और मर्य्यादा का ध्यान भूलकर चीख उठे—

'अरे, देखो! देखो! यह सुकेतु सारे संसार में छाया जा रहा है!'

राजराजेन्द्र त्रिभुवनपाल ने फिर राजसूय यज्ञ पूर्ण कर राजा महाराजाओं की भेंट स्वीकार की अथवा नहीं इस सम्बन्ध में इतिहास मूक है। सिवा उनकी और राजपुरोहित के बीच हुई एक वार्ता—

पुरोहित ने कहा—

'महाराज! चक्रवर्तीत्व एक पीढ़ी भी पूर्णतः नहीं रहता।'

'क्यों?' महाराज ने भयपूर्वक पूछा।

'शक्ति' के सिर ऐसा श्राप है।'

तृप्ति !

छोटे बालक कुसुमायुध का भी निरुत्साही मन आज थोड़ा थोड़ा आनन्द का अनुभव कर रहा था। उसने देखा कि मन-मोहक तथा चित्त-आकर्षक वस्त्रों व अलङ्कारों से अलंकृत मधुर स्वप्नमें मग्न तथा सरल स्मित मुखवाली कोई युवती गृह-व्यवस्था में लीन घर में इधर उधर जल्दी जल्दी आ जा रही है। कुसुमायुध पर माता पिता दोनों का ही विशेष स्नेह था. बालक के सुंदर और नवीन नाम-करण की प्रेरणा वश ही दम्पति ने उस का इतना लम्बा नाम रख दिया था। बेचारी माँ पुत्र की सुलभ बाल-लीला देखने और पालन-पोषण के लिये जीवित न रही। वह उसे चार वर्ष का ही छोड़ स्वर्ग-गामी हुई। इस बात को भी बीते दो वर्ष हो गये...किन्तु बालक की आशानुसार आज तक वह वापस नहीं आई।

'माँ कहाँ गई ?' यही एक प्रश्न बालक कुसुमायुधके हृदयको हर क्षण व्यथित किये रहता। कोई कहता वह प्रभु के घर गई, कोई कहता मामा के घर गई, कोई कहता वह यात्रा करने गई, किन्तु नौकर कहता कि वह मर गई।

'परन्तु मुझे साथ लिये बिना क्यों गई ?' बालकका आँसू भरी आँखों से यह प्रश्न सभीकी आँखें तरल कर देता। लगातार एक वर्ष तक एक ही प्रश्न करते करते थक कर बालक ने अंत में

अपना प्रश्न बदला—

'परंतु माँ लौट तो आयेंगी ?'

प्रश्न सुन लोग एकाग्रदृष्टि से बालक को निहारने लगते, बहुतेरे नेत्रों को रुमाल से ढक लेते कभी कोई अवरुद्ध कण्ठ से कहता—हाँ, हाँ आयेंगी...जाओ—खेलो।

इतना ही उत्तर बालकके अङ्ग अङ्गको सजीव कर देता। वह दौड़ता, खेलता, हँसता और क्रमशः बालक के दो चार दिन सुख स्वप्न में बीत जाते। इसी प्रकार कुछ दिन बीतने पर बालक ने निराश हो किसी भी प्रकार का प्रश्न पूछना ही बंद कर दिया। उसे निश्चय हो गया कि पड़ोसी और सभी सम्बन्धियों ने मिल कुचक्र रच उसे माँ से अलग कर रक्खा है। उसमें हर एक के प्रति घृणा का भाव उदय हो उठा। अब वह अकेला ही अकेला रहने लगा। अब प्रायः रात्रि में सोते-सोते ही चिल्ला उठता—माँ...माँ...।

पिता की निद्रा टूट जाती वह उठकर बालक को पुचकारता और उसे फिर सुलाने की चेष्टा करता।

❀ ❀ ❀

आज एकाएक बालक ने एक लावण्यमयी युवती को घर में देखा, माँ का मुख किसी भी सुंदर स्त्री में ढूँढ़ने का सतत प्रयत्न करता। माँ के सदृश्य कपड़े पहिने स्त्रीको वह बार बार ध्यान पूर्वक देखता, जब कभी कोई स्त्री घर में मिलने के लिये आती तो उससे वह घर में रहने के लिये आग्रह करता। माँ के स्नेह का भूखा बालक निरंतर अपनी शक्ति और बुद्धि के अनुसार माँ की शोध किया करता।

पहले जिस प्रकार स्त्रियाँ आ-आ कर चली जाती थीं उसी प्रकार यह भी तो नहीं चली जायेंगी, इस विचार ने उसके मन

में एक नयी चिन्ता उत्पन्न कर दी। वह उद्विग्न हो उठा, इसी बीच अन्य स्त्रियों के सदृश्य इस स्त्रीने भी कुसुमायुध को अपने निकट बुलाया। बालक ने देखा युवती अपने साथ में लायी हुई तीन संदूकों को सोने के कमरे में एक ओर सजाकर रख दिया है। इससे उसने अनुमान लगाया कि दूसरों की तरह यह तुरंत लौट कर न जायेंगी। फिर भी उसके मन ने निश्चय कर लेने के लिये विवश किया। सशंकित बालक ने युवती से पूछा...'आप यहीं रहियेगा या आप भी...?'

बालक के इस सरल प्रश्न से युवती हँस पड़ी, उसने पूछा, 'आपकी क्या इच्छा है, रहें या जायें ?'

'यहीं रहिये।' बालक ने ध्यानपूर्वक उसके मुँह की ओर देखते हुए कहा। उसके समझ में नहीं आया कि यह नई आई हुई युवती उसे "आप" कह कर क्यों सम्बोधन करती है।

युवती ने बालक को थोड़ी देर खेल में बहलाया, अच्छे व स्वच्छ कपड़े पहनाये, बालों को सँवारा और अपने साथ थाली में भोजन भी कराया। ये सब बातें बालक को एकदम नयी लगीं। वह सोचने लगा इतनी अच्छी स्त्री कौन है ? क्यों आई है ? बालक नई दुनियाँ में विचरण करता हुआ उसके चारो ओर हिरता फिरता व खेलता।

उसने देखा कि वही नहीं, उसके पिता भी स्त्री के कार्यों से अत्यंत संतुष्ट हैं। पर वह पिताके सम्मुख बहुत धीरे धीरे बोलती है, आड़से देखा करती तथा हँसी दबाकर हँसती है, ऐसा क्यों ? उसके मन ने कहा यह स्त्री नित्य प्रति अगर घरमें माँके समान ही रहती तो कितना अच्छा होता।

कुसुमायुध से रहा नहीं गया। एक दिन सोने के पहले वह पूछ ही बैठा—'आप हमारी कौन हैं ?'

उस युवती ने कभी कल्पना भी न की थी कि उससे ऐसा प्रश्न पूछा जायगा। फिर तत्काल ही मन को स्थिर कर उसने उत्तर दिया—

'मैं तुम्हारी माँ हूँ।'

'माँ!'

माँ शब्द सुन बालक प्रेम के लहरों में हिलोरें लेने लगा कुछ समय के लिये उसके नेत्रों के समक्ष एक प्रेममय नये संसार की सृष्टि हो गयी। अनेक विचारोंसे मन आंदोलित हो उठा, उसकी इच्छा हुई कि दौड़ कर वह माँ की गोद में जा बैठे और वर्षों के माँ के स्नेह से रिक्त सूखे हृदय को तरल बना डाले परन्तु न जाने क्यों वह ऐसा चेष्टा न कर सका, फिर भी उसने स्त्रीका हाथ अपने दोनों हाथों से पकड़ अपने बल भर उसे दबाया। माँ कहनेवाली स्त्री जरा हँसी। परन्तु इतने हँसने से ही क्या बालक के शुष्क हृदय को कुछ शान्ति मिल सकती थी—वह सोचने लगा—क्यों नहीं वह उसे अपनी गोदमें बैठाकर प्यार करती?

कुसुमायुध के शंकित मन ने पूछा—'आप हमारी सगी माँ हैं?'

बालक बुद्धिमान और चतुर है। ब्याह कर आई युवती की बालक प्रथम ही दिवस इस प्रकार कड़ी परीक्षा ले रहा है। उसने तो यह जानते हुए कि उसे एक बालक को पालना होगा विवाह की स्वीकृति दी थी। पर बालक को पालन करने का प्रश्न तो प्रायः अपनी माँ को ही कठिन होता है और विमाता के लिये तो अत्यन्त जटिल...इसका उस युवती को पूर्ण ज्ञान न था। उसने उत्तर—

'हाँ! मैं तुम्हारी सगी माँ हूँ।'

'फिर आप मुझे तुम कह कर क्यों नहीं पुकारतीं?'

'ऐसा ही पुकारूँगी...।'

'मैं आपको क्या पुकारूँ ?'

'चाची......!'

युवती कह ही न सकी कि वह उसे 'माँ' पुकारे। अभी पत्नी का ही उत्तरदायित्व उसके सिर पर लदा पड़ा था। माँ शब्द उसे बहुत ही भारी जान पड़ा...।

चाची का सम्बोधन सुन बालक हताश हो उठा। उसे निश्चय हो गया कि यह उसकी माँ नहीं है। विचार मग्न बालक निःश्वास छोड़ सो गया।

❀ ❀ ❀

दूसरी बार विवाह करने वाला पुरुष लोगों की चर्चा का विषय बन जाता है। कटाक्ष और ताने तो साधारण सी बात हैं; कभी कभी उसका हल्का सा तिरस्कार भी लोग करने लगते हैं। अधिकांश में स्त्रियाँ और पत्नी सुख भोगते हुए पुरुष ही यह वृत्ति धारण करते हैं। स्त्रियों की यह वृत्ति तो सकारण है क्यों कि दुर्भाग्यवश युवावस्था में विधवा होने पर वे अपने संसारिक सुखों को बलिदान कर जीवन धार्मिक क्रियाओं में व्यतीत कर अपनी क्षमता व साहस का पूर्ण परिचय देती हैं। परन्तु स्त्रियों को इस बंधन में बाँधने वाला तथा अनेक शास्त्रों को रचनेवाला तथा उनके समक्ष हर प्रकार से अपने को शक्तिशाली, साहसी तथा उनका रक्षक होने का दम भरने वाला पुरुष विधुर होने पर कुछ दिन बीतते न बीतते अनेक प्रकार के साधनों के उपलब्ध होते हुए भी संसार सुख के आगे अपने को पराजित पा जीवन संगिनी के लिये उन्मादित हो उठता है। फिर उसकी ओर स्त्रियाँ क्यों न उँगली उठावें। पर पत्नी के साथ संसार सुख भोगते हुए पुरुष अगर उसे तिरस्कृत दृष्टिसे देखें तो यह अवश्य अनुचित है।

बालक कुसुमायुध के पिता ने फिर विवाह करने का निश्चय किया। समाज ने पुरुषके अधिकार को तुरंत स्वीकार कर लिया और विवाह भी हो गया। पुरुष समझदार था, उसने भावी पत्नी से विवाह के स्वीकृति के पूर्व ही यह बतला दिया था कि गत पत्नी से एक संतान है जिसका उसे अपने पुत्र समान ही पालन करना होगा। भावी पत्नी ने सउत्साह अपनी स्वीकृति दी थी और उसी प्रतिज्ञानुसार पति-गृह में आते ही मातृ-स्नेह के भूखे बालक कुसुमायुध के पालन में अपने पुत्र-वत शक्तिभर प्रयत्न करने लगी।

'कुसुमायुध! अब उठोगे क्या? सात बज गया।' प्यार भरे शब्दों में माता बालक को जगाती। 'आओ सिर में तेल लगा दें।' बालक माँ के निकट बैठ जाता...और बाल सँवारने देता। 'आओ अब नहा लो।' कुसुमायुध स्नान कर लेता।

'बेटा! अब उठ जाओ। दो से अधिक रोटी खाना ठीक नहीं!' वह उठ जाता। 'बहुत दौड़ो नही।' बालक का पैर माँकी आज्ञाके साथ ही रुक जाता। 'चिल्लाकर नहीं बोलना चाहिये।' बालक के अणु अणु का उभरता उत्साह अन्दर ही समा जाता।

कुसुमायुध को एक आदर्श बालक बनाने की तीव्र इच्छा विमाता के मन में जागृत हो गई थी। बालक के स्वास्थ्य और सुख के लिये वह सतत परिश्रम करती।

विमाता के अविरलप्रयत्न से बालक गुणी और विनयी होने लगा। बालक कुसुमायुध का शंकित मन हर क्षण उससे यह प्रश्न करता—

'क्या, माँ ऐसी ही होती है?'

आकाश के स्वतन्त्र वातावरण में कल्लोल सहित उड़ते पक्षी को एकाएक आज्ञा धारी विमान बनाया जाय तो जो परिस्थिति

उसके मन की होगी वही बालक कुसुमायुध की भी हुई। उसके कपड़ों में स्वच्छता आ गई, गति में स्थिरता आ गई खिल-खिलाहट के आवाज के साथ हँसने के स्थान पर गम्भीर मुस्कान को सब ने देखा सम्पूर्ण दिवस में क्षण भर भी शान्त न बैठ उधम करने वाला बालक नित्य नियमसे पाठशाला जाता। यह सब कुछ होने पर भी क्रम क्रम उसका शरीर क्षीण होने लगा।

'कुसुमा बराबर पीला पड़ता जा रहा है, मालूम होता है कि शरीर में खून बनता ही नहीं। किसी डाक्टर को दिखला कर पूछिये न कि क्या बात है?' विमाता ने चिन्तायुक्त शब्दों में पति से कहा।

विमाता को कर्तव्य रत देख पति के मन ने संतोष अनुभव किया। उसने शहर के प्रतिष्ठित डाक्टर को बुलाकर बच्चे की परीक्षा कराई। पूर्ण परीक्षा कर लेने पर डाक्टर ने अपना मत प्रगट किया—कोई खास शिकायत नहीं है। काडलीवर दीजिये, दो-चार दिन में सब ठीक हो जायेगा।

नित्य नियमपूर्वक विमाता ने बालक को काडलीवर पिलाना प्रारम्भ कर दिया। बालक कुसुमा ने निश्चय किया कि इस गंदी दवा के पीने से तो अच्छा है कि वह बीमार रहे। परन्तु माँ के शिक्षा और आग्रहके कारण उसने अपने विचारको दवा दिया।

'कुसुमा! इतनी दवा पी लो तब खेलने जाओ।' माँ कहती।

'चाची! यह तो अच्छी नहीं लगती।'

'अच्छी न लगे पर पीना तो पड़ेगा ही!'

'क्यों?'

'डाक्टर साहब ने कहा है।'

'क्या, डाक्टर के कहने अनुसार करना चाहिये?'

'बड़े जो कहें वह छोटों को करना चाहिये।'

'आप सब लोगों के भी कहने के अनुसार कार्य करना आवश्यक है ?'

'हाँ।'

'न करें तो ?'

'लड़के बीमार हो जाते हैं ?'

'क्या मैं बीमार हूँ ?'

'हाँ थोड़ा।'

'दवा न पीऊँ तो ?'

'तो मर जाओगे।'

विमाता ने डर दिखलाई, वह बालक को धमकाती न थी। बालक को पालने के विषय के अनेक ग्रंथ उसने पढ़े थे। वह बालक को वादाविवाद में निरुत्तर कर अपना आदेश पालन कराती थी।

'मर जाऊँ तो क्या हानि होगी ?' शान्त हो काडलीवर पीते हुए बालक के मन में प्रश्न उठा। माँ मर गई है ऐसा कोई कह रहा है। उसे अपनी माँ की भूली याद ताजी हो उठी।

मैं मर जाऊँ तो क्या माँ से भेंट होगी ? उसके मन ने तर्क किया तर्क उसे ठीक लगा।

काडलीवर नित्य नियम पूर्वक पीता हुआ भी बालक नित्य प्रति क्षण से क्षीणतर होने लगा।

'कुसुमा तुम्हें क्या हो गया है ?' नित्य नियमानुसार स्नान कर भोजन के लिये आये हुए बालक से विमाता ने पूछा।

'कुछ नहीं। चाची जी !' कुसुमायुध ने उत्तर दिया।

'परन्तु तुम्हारी आँखें तो लाल हैं ?'

'हमें नहीं मालूम।'

'शरीर के रोयें क्यों भर भराये खड़े हैं ?'

'थोड़ा जाड़ा लगता है।'

'तब नहाया क्यों ?'

'स्नान बिना भोजन कैसे करता, बिना भोजन पाठशाला कैसे जाता ?' कुसुमायुध ने अपना नित्य नियम भी बड़ों का अनुकरण कर बना लिया था।

कुसुमायुध का बदन फिर एक बार शीत की तेजी से काँप उठा—माता को अनुभव हुआ कि बालक को जोरों का जाड़े का बुखार आ रहा है। उसने दाई को पुकार कर कहा—

'देखो ! कुसुमा का बदन तो नहीं जल रहा है ?'

दाई ने कुसुमायुध की बदन टटोल कर कहा—हाँ बहू जी ! जोरों का बुखार है।

'यह एकाएक अभी कैसे हो गया ?'

'हमें नहलाते समय भी थोड़ा थोड़ा गरम लगता था।'

'फिर तुमने नहलाया ही क्यों ? जा, जा ! जल्दीसे बिछौना बिछा अच्छी तरह ओढ़ा कर सुला दे। मैं डॉक्टर को बुलवाती हूँ।'

'परन्तु चाची जी ! हमें तो पाठशाला जाना है। नौकरानी की गोद से उचक कर बालक ने कहा। बालक की नित्य नियम के प्रति दृढ़ निष्ठा देख माँ मन ही मन सुखसरोवर में डुबकी लेने लगी। आँखों में अनन्द के आँसू उमड़ आये। उसने कहा—

'बुखार में पाठशाला नहीं जाया जाता—जा कर सो रहो। मैं अभी वहीं आ रही हूँ।'

दाई ने बालक को गोद में ले जा कर बिछौने पर अच्छी तरह ओढ़ा कर सुला दिया।

माता बड़बड़ा उठी—बेवकूफ कहीं की ! बुखार में नहलाने

की क्या जरूरत थी। नौकर तो नौकर ही हैं। मालूम होता है जंगल से पकड़ कर आये हैं ?' इतने में ही डाक्टर आ पहुँचा। माता के बड़बड़ाहट का रूप बदला। बालक को बुखार क्यों आया ? कैसे आया ? कब उतरेगा ? कब अच्छा हो जायेगा ? इत्यादि...अनेकों प्रश्न एक साथ ही उसने पूछ डाले।

डाक्टर ने बालक की आँखों की पलकें उठाकर देखा, बगल में थर्मोमीटर लगाया, चित्त किया, उलटा सुलाया, छाती तथा पीठ यन्त्र द्वारा देखा। पेट दबा कर लीवर इत्यादि की परीक्षा की। कुछ समय तक अनेक प्रकार की परीक्षायें कर अन्त में दवा लिखा और जाते वक्त यत्न पूर्वक सेवा-सुश्रुषा के लिए हिदायत कर आवश्यकता पड़ने पर सूचना देने के लिए कहा।

बालक का बुखार बराबर बढ़ता ही गया बुखार के साथ साथ बेचैनी और छटपटाहट भी। डाक्टर को माँ ने फिर बुलाया। दम्पति बराबर वहीं बैठे रहे।

बालक के सिर पर हर समय बरफ की थैली रखने के लिये डाक्टर का आदेश हुआ। प्रायः डाक्टर आदेश देने के समय पालन-कर्ता के शक्ति का विचार ही नहीं करते। बरफ रखने वाला नौकर कार्य से थक कर सिरहाने ऊँघने लगा। माता ने नौकर को सोने की आज्ञा दे स्वयं शुश्रुषा करना प्रारम्भ किया, बरफ मस्तक पर रखना माँ को कोई भारी कार्य्य न लगा रात्रि १२ बजे तक बिना आँख की पलक झपकाये और बिना कार्य में शिथिलता के आये वह सुश्रुषा करती रही। विशेष रात्रि बाद पति ने आग्रह कर पत्नी को सोने के लिये विवश कर आप स्वयं पुत्र के निकट परिचर्य्या के लिये बैठे। विमाता का मन न जाने किस चिन्तासे पीड़ित था कि उसे नींद ही न आ रही थी। थोड़ी देर बाद ही बालक एकाएक चित्कार कर उठा—माँ...ओ

माँ...! लेटी हुई माता बिछौनेसे एकदम झपटकर उठी और पति के हाथ से बरफ की थैली ले बालक के सिरहाने बैठ गई। निस्तब्ध सूनसान रात्रिमें बालक फिर चीत्कार कर उठा—माँ...!

क्या बेटा ? यह शब्द विमाता के कण्ठ तक ही रह गया। लज्जा ने मुँह बंद कर दिया। उसने सिर्फ इतना ही पूछा—'क्या है कुसुमा ?'

बालक ने आँख खोल विमाता की ओर देखा।

'आपको नहीं !' कह बालक ने फिर आँख बंद कर ली।

'तुमने पुकारा न ?' विमाता ने प्रश्न किया।

'मैने माँ को पुकारा...!' बिना आँख खोले ही बालक ने प्रति-उत्तर दिया।

'पर मैं ही तो तुम्हारी माँ हूँ।' विमाता ने कहा।

बालक ने फिर आँख खोल एक बार भर नयन विमाता की ओर देख कर कहा—'हाँ...परंतु मैं अपनी असली माँ को बुला रहा हूँ।'

विमाता का हृदय रो उठा। उसके मन में चोट लगी, वह सोचने लगी की मैं इसे अपनी माता सदृश्य क्यों नहीं लगती ? उसने पूछा—

'कुसुमा ! क्या मैं तुम्हें असली माँ नहीं मालूम देती ?'

'मेरी माँ तो मुझे तू कहकर बुलाती थी ! आप नहीं।'

'मैने तुम्हें आप कहकर कब बुलाया ?' विमाताने झूठ बोला।

'पर मेरी माँ तो मर गई न ?'

'पर फिर वह वापस आई न देखते नहीं...

'क्यों ?'

'मेरे बेटे ! तेरे लिये।'

विमाता सच्ची माँ बन गई। उसने बालक का मुँह चूम लिया, उसके हृदय में मातृत्व का पाताल कुँआँ-फूट निकला। बालक के उस छोटे पलङ्ग पर जा कर सो रही और कुसुमा को छाती से चिपका कर दबा लिया।

बालक के लिये इस प्रेम के गहरे अर्थ को समझने की आवश्यकता न थी। उसने तो इतना ही समझा कि इस प्रकार हृदय से चिपटाकर अपनी ही माँ सो सकती है। माँ से लिपट-कर कुसुमायुध प्रगाढ़ निद्रा में मग्न हो गया। उसके शरीर का प्रज्वलित ताप शांत हो गया।

अब उसके मस्तक पर बरफ के शीतलता की आवश्यकता न थी। आज उसने माँ के अमृत भरे हृदय की ठंढक पा ली थी।

अमर प्रेमी

गाँव में प्रवेश करते समय गम्भीर जी के पैर लड़खड़ाने लगे। थकावट आने लगी, पर उससे पैर आगे न बढ़े ऐसी स्थिति न थी। गाँव का तालाब अपनी पुरानी जगह पर ही था, केवल तट पर एक नया कमरा बन गया था। दो तीन घरों के ऊपर फूस का छाजन डाला हुआ था। यह सायंकाल के धूमिल अंधकार में उन्हें नवीन सा लगा। तालाब के किनारे तपस्या करते हुए बड़-वृक्ष पहले के ही रूप में धीर गंभीर छायादार बने हुए थे। उनकी लटकती हुई डालियों पर पक्षी अंधकार के खुशी में चहचहा रहे थे।

बड़ के मूल पर एक चौतरा किसी ने बनवा दिया था। इसी पर गम्भीर जी बैठ गये। पच्चीस वर्ष पश्चात् उन्होंने गाव में कदम रक्खा था। पचास वर्ष की उनकी आयु थी, कारागृह के अंधकार में उनका हृदय कठोर बन गया था। वही हृदय गाँव के निकट आते ही धड़क उठा।

टन-टन घंटी बजती उन्होंने सुनी। एक अठारह बीस वर्ष का युवक दो बैलों को हाँकता हुआ बड़ के पेड़ों के नीचे से गाँव में जा रहा था। युवकने कनखा आँखों से देखा, चौतरे के ऊपर बैठा गम्भीर जी उसका अपरिचित था। युवक ने प्रश्न किया—

'चौतरे पर कौन है?'

'कोई नहीं भाई ।' गम्भीर जी ने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया ।

'कोई नहीं, अरे. तुम्हारा नाम भी है या नहीं ? नाम बतलाते हुए मुश्किल मालूम देती है ?' युवक कहता हुआ बैलों को हाँकता आगे बढ़ गया ।

'तुम देखते नहीं भाई । थोड़ी देर सुस्ताने के बाद मैं आगे चला जाऊँगा ।'

'गाँव में कितने भिखारी उतरा आये हैं !' अंधकार में भी अच्छी तरह दिखलाई देने वाले युवक के शब्दों को गंभीर जी ने सुना—उसका शिथिल कंधा थोड़ा तन गया । मन ही मन उसने कहा—इन्हीं शब्दों के कारण महेशजी को इसी स्थान पर मार डाला था ! आज यह लड़का मुझे भिखारी कह रहा है और मैं उसे सुन रहा हूँ । यदि भिखारी भी होता तो भी क्या महेशजी बचने वाला था ? कृपा का आँचल खींचने वाला कौन जीवित बच सकता था ? पच्चीस वर्ष के युवक गंभीर जी का सामना करने वाला समूचे गाँव में कोई भी न था ।

उसके आँख की ज्योति से ही पक्षी गिर पड़ते थे । उसके एक जबरदस्त झटके से पड़वा (भैंस का बच्चा) की गर्दन धड़ से अलग हो जाती थी । दूसरे गाँवका मस्त साँड़ यदि अपने गाँव के खेतों को नष्ट करता तब गंभीर जी उसकी सींग पकड़ गाँव के बाहर खदेड़ आता था, और ढोरों को इधर उधर घूमने देने का जुर्माना उस गाँवके मुखिया से वसूल कर लिया करता था ।

अपने मालिक के घोड़ी पर जब वह सवारी करता तब उस घोड़ी में पवन का वेग आ जाया करता था । दशहरा के अवसर पर एकत्र हुए जबरजस्त से जबरजस्त ठाकुरों में से किसी का भी साहस न होता कि उसकी घोड़ी को पछाड़ आगे निकल जाय । गंभीर जी सम्पूर्ण भीलवाड़ा का माननीय वीर था ।

परन्तु उसके पास अपनी जागीर जमीन न थी। दस हाथ लम्बी चौड़ी झोपड़ी ही केवल उसकी हैसियत थी। गाँवके पटेल के यहाँ वह नौकरी करता था। पटेल के पास अच्छे परिणाम में जमीन थी। उसके पास जानवर (ढोर आदि) भी अधिक संख्या में थे। परिश्रमी और वफादार गम्भार जी पटेल को खेती के कामों के लिये बहुत ही उपयुक्त व्यक्ति मिला था। परिश्रम के बाद पटेल के यहाँ भोजन कर वह अपनी झोपड़ी में आता, अकेले ही तालाब में जा स्नान कर दिन भर की थकावट मिटाता और बाँसुरी बजाता, फिर झोपड़ी में जा कर सो जाता। कितनी ही उजेली रातों में वह झोपड़ी के बाहर चारपाई डाल उसपर बैठकर अपनी बाँसुरी बजा गाँव की अशिक्षित युवतियों को रसानन्द से विभोर कर देता था।

उसके जीवन की बड़ी से बड़ी एक अभिलाषा थी। पटेल की लड़की रूपाके साथ विवाह। वह होना असम्भव है यह वह जानता था किन्तु अशक्य वस्तु का स्वप्न देखने से कौन रोक सकता है ? माया भी उसको अपनी ममता दिखलाती, किन्तु इस प्रकार नहीं कि वह उसे अपनी अभिलाषा को प्रबल बनाने में सहायता पा सके। रूपा और गम्भीर जी अनेक समय खेतों में एकान्त में मिलते, परन्तु गम्भीरजी ने कभी वचनों द्वारा अथवा आँखों के ईशारे से अपनी अभिलाषा प्रगट नहीं की। गाँव की अनेक युवतियाँ गम्भीर जी को कनखी आँखों से देखती थीं, और अवसर प्राप्त होनेपर उससे हँसती और बोल भी लेती थीं। परन्तु गम्भीर जी को रूपा के सिवा कोई भी रुचती ही न थी। वह जब बाँसुरी बजाता उसकी आँखों के सामने रूपा की मूर्ति प्रस्तुत रहती।

गाँव की युवतियों को निगरानी करने वालोंकी आवश्यकता

नहीं होती। वह अकेली अकेली सीमों (खेतों) इत्यादि में आया जाया करती हैं, वह खेतों के भयानक एकान्त में अकेली घास छीला करती हैं। परन्तु पटेल की कन्या रूपा के साथ अधिकतर कोई दूसरी स्त्री या पुरुष होता ही था। फिर भी उसे अकेले भी जाने का अवसर आ ही जाता था। एक दिन गेहूँ में सारी रात पानी देने के बाद थका हुआ गम्भीर जी झोपड़ी में आ सो गया। रूपा ने समझा वह खेतों में ही सोया होगा इस कारण प्रातः उसे उसकी झोपड़ीसे बिना बुलाये ही सीमा में चली गई।

सुबह होते ही गम्भीर जी जाग उठा, पटेल व्यङ्ग करेगा ऐसा सोच दौड़कर वह खेत में पहुंचा। खेतों में जाने पर उसने देखा कि कुएँ के जगत पर माथा डाले रूपा रो रही है।

'रूपा! क्या हुआ? क्यों रो रही हो?' गम्भीर जी ने प्रश्न किया।

रूपा ने माथा उठाया, उसकी बड़ी-बड़ी आम के फाँक सी आँखें भर उठीं। रूपा कोई उत्तर न देसकी। गंभीर जी ने फिर प्रश्न किया। साँस भरती हुई रूपा ने उत्तर दिया—

'वही—मुआ महेश...। मेरा जी लेने के लिए ही बैठा है। कितने ही दिनों से मेरे पीछे पड़ा है। आज उसे मैंने कुएँ में गिर जाने का डर न दिखलाया होता तो न जाने क्या हो गया होता?'

'परन्तु......।' गंभीर जी कहते-कहते अटक गया।

'परन्तु क्या? मेरी उसने दाँतुन छीन लिया। फिर मेरा क्या वश था?'

'नहीं नहीं। मैं तो यह पूछ रहा हूँ कि तुम्हारा विवाह महेश जी से होने वाला है न?'

'जा, जा! तेरे में कुछ बुद्धि भी है कि नहीं? रूपा उसके

साथ विवाह करेगी ?'

'ऐसा क्यों कह रही हो ? जैसा पटेल का घर वैसा ही महेश जी के पिता का घर।'

महेश जी का पिता भी एक अच्छा खासा ज़मीदार ठाकुर था। उसने भी एक समय गाँव की चौधराहट की थी।

'घर तो है। परन्तु रूपासे विवाह हो ऐसा वर तो नहीं है।'

'पटेल से बात तै हो गई हो और तब महेश जी तुम्हें छेड़ता हो तो ?'

'तब तुम क्या करोगे ? समूचे गाँव को अपने यहाँ इकट्ठा कर मैं खुद बाबूसे बात करूँगी। वह कहें तो ?'

'रूपा ! मैं तो पटेल का नौकर हूँ। महेश जी से कुछ कहा तो पटेल मुझे नौकरी से छुड़ा देंगे।'

'पटेल नौकरी से छुड़ा देंगे तो तुझे कोई नौकरी देने वाला नहीं मिलेगा, क्यों ठीक है न ?' रूपाने व्यङ्ग किया। गम्भीर जी को अनेक लोग कामके लिये बुलाते थे, परन्तु क्या हर जगह रूपा मिलेगी ? रूपा जहाँ न होगी वहाँ उससे कैसे रहा जायेगा ? परन्तु रूपा के सामने यह बात कैसे कही जाय ? इसने अच्छा ही पूछा। महेश जी अगर बल दिखलाये तो ? गम्भीर जी ने थोड़ी देर विचार कर कहा—

'रूपा ! तुम ऐसा मत करो।'

'तब ?'

'तुम्हें जिसके साथ विवाह करना हो उसे सूचना दे दो।'

'उसे सूचना कौन करेगा ?' बड़ी बड़ी आँखों को और भी बड़ी बना कर रूपा ने प्रश्न किया।

'अगर तुम्हारी इच्छा हो तो मैं कह आऊँ।'

'इस तरह कहलाने की जरूरत पड़ती है ? तुम्हें बुद्धि तो

है नहीं ।' सरल हँसी हँसते हुए रूपा ने कहा।

'परन्तु वह है कौन यह तो तुम कहो ? मैं निश्चय कह आऊँगा ?'

'इतना तो कहा फिर भी समझ में नहीं आया, इतने मूर्ख हो !' आँखों से विचित्र भाव प्रदर्शित करती हुई रूपा बोली।

'ऐसे क्या हो सकता है ? अगर तुम नाम नहीं बताना चाहती हो तो मुझे पहिचनवा तो दो।'

'तुम पहिचान सकोगे ?'

'गाँव म मैं किसे नहीं पहिचानता।'

'बताऊँ। यह कौन है ?' रूपा ने गंभीर जीके हृदयमें उँगली चुभोते हुए कहा।

'यह तो मैं हूँ।'

'हाँ, तू और दूसरा कौन ?' कह रूपा ने अपने दोनों हाथों की नन्हीं नन्हीं हथेलियों से अपनी दोनों आँखें मूँद ली।

❀ ❀ ❀

जैसे तीर लगी हो ऐसा गंभीर जी को लगा। कुछ देर तक वह अभान में खड़ा रहा। प्रभु की कल्पना करने वाले से प्रभु साक्षात् मिलने के लिये आवें यह जितना असम्भव है उतना ही उपरोक्त बातें भी गंभीर जी को असम्भावित सी लगी। रूपा ने आँख से हथेलियों को हटा अवाक बने गंभीर जी को देखा। उन्हें निश्चेष्ट देख रूपा हँसी।

'रूपा, पागल तो नहीं हो गई हो, क्या यह हो सकता है ?' गंभीर जी ने प्रश्न किया।

'क्यों नहीं हो सकता ?'

'अरे हम कौन और तुम कौन ?'

'मैं तुम्हारी रूपा और तुम हमारे गंभीर।'।

'समझती हो रूपा। घरके नौकर के साथ विवाह, यह हँसी का खेल नहीं है।'

'तुम्हें नौकर कौन कहता है ? तुम्हारी सम्मतिके बिना बाबू एक पैर भी तो जमीन पर नहीं धरते। सारी खेती तो उन्होंने तुम्हें ही सौंप दी है।'

'यह तो पटेल जी की दया है। परन्तु लड़की और खेती दोनों का पृथक पृथक अस्तित्व है।'

'हाँ ठीक है। परन्तु यह हम लोगों की बात या पटेल जी की बात है।'

'पटेल जी के हुक्म बिना यह कैसे हो सकता है।'

'मैं बाबू को समझाऊँगी, और नहीं मानेंगे तो तुम्हारे पास भाग आऊँगी।'

गंभीर जी ने अविश्वास से सिर हिलाया। रूपा ने भवें चढ़ा कर कहा—

'अगर विश्वास नहीं है तो लो मारो हाथ।'

भयग्रस्त गंभीर जी का हाथ आगे बढ़ गया। रूपा ने उसके हाथ पर अपना हाथ रख दिया, दोनों बहुत देर तक इसी स्थिति में रहे, हाथ अलग कर लेने का ध्यान नहीं आया। कदली के समान सुडौल गौर वर्ण रूपा का हाथ किस प्रकार से जल्दी छोड़ा जा सकता था ? इन सुन्दर नरम हथेलियों के पीछे कोमल कलाइयों में हलका सुवर्ण का कड़ा था। सौंदर्य्य का आकर्षण मनुष्य को हिंसक बना देता है। कड़े के निकट की गोरी कलाई को पकड़ अपने मुँह की ओर ले जाते हुए गंभीर जी ने बीच ही में एकाएक रुके हाथ को अपने मुट्ठी से जोर से मसलते हुए कहा—

'रूपा! आज से तुझे जो छेड़ेगा उसे मैं संसार से सदा के लिये हटा दूँगा!'

'और तुम छेड़ोगे तो?' एक हाथ से अपने दूसरे हाथ को दबाती हुई, अपना दुःख हलका करती हुई हँसते हँसते रूपा ने पूछा।

'तुम मुझे झटक देना।' गम्भीर जी ने उत्तर दिया।

दोनों काम पर जुट गये। दिन के प्रसार के साथ लोगों के आवागमन भी बढ़ गये। सायंकाल तक परिश्रम कर वे घर लौटे। गम्भीर जी तालाब में नहाने गया। नहा कर बड़ के नीचे बैठ वह अपनी बाँसुरी बजाने लगा। किन्तु बाँसुरी बजाने में आज उसका मन लग नहीं रहा था।

महेश जी उसके सामने आ कर खड़ा हो गया था। उसने बाँसुरी के स्वर को पहिचाना। रूपा की बातें कर आनन्द उठाने की लालच से वह बड़ के नीचे आया था। उसके साफे में फूल खोंसे हुए थे। कमर में फेंट बंधी थी और हाथ में तलवार लिये था। पूर्ण रूप ठाकुर बन महेश जी घूम रहा था।

'यहाँ क्या कर रहे हो गंभीर?'

'जो हमारा मन।' गंभीर जी ने लापरवाही के साथ उत्तर दिया।

'ओ, हो, आज बड़ा मिजाज है। क्या कोई भेड़ बेड़ चराने वाली लाया है क्या? क्यों?'

'तो तेरा क्या? क्या तेरे सिवा सब पानी पी कर पले हैं? सावन से भादों दुबर है क्या?'

'यह हम साहूकारों का काम नहीं है। खैर, जाने दो, पर रूपा क्या कर रही है यह तो बतलाओ?'

गंभीर जी की आँखें चौड़ी हो उठी। उसने कहा—'महेश

जी आज कहा तो कहा. परन्तु आज पीछे कभी रूपा का नाम लोगे तो झगड़ा हो जायेगा।'

महेश जी तिरस्कार पूर्वक हँसा और कहा—

'क्यों ? तेरे बाप का क्या जाता है ? तुझसे और रूपा से मतलब ? तू तो पटेल का नौकर है।'

'हमारे और रूपा में जो है सो ठीक है। परन्तु तुम सचेत रहना। रूपा से छेड़खानी की तो जीता न छोड़ूँगा !'

'जा जा तेरे ऐसे बहुत देखे हैं। रूपा की रक्षा के लिये तुझे नहीं रक्खा गया है।' महेश जी भी गम्भीर जी के मुकाबले में युवा था। वह शक्तिशाली भी था। और उसे अपनी अच्छी हैसियत और उच्च कुल का अभिमान था। उसे गंभीर जी से डरने का कोई कारण न था।

'महेश जी मैं तुमसे ठीक कहता हूँ। रूपा का पीछा छोड़ दो नहीं तो मैं तुझे बिना मौत का ही मार डालूँगा।'

महेश जी फिर हँसा और बोला—'अरे गंभीर जी तुम्हें रूपा का इतना क्यों ख्याल रखना पड़ता है ?'

'इसलिये कि रूपा हमारी है।'

महेश जी खड़खड़ा कर हसा और कहा – 'तेरे जैसे भिखारी से रूपा का विवाह होगा। जिसका गाँव में एक घर नहीं और न सीम में एक खेत।'

'तू स्वयं अपने बाजुओं की ताकत से एक खेत तो पैदा कर, बापकी मिल्कियत पर क्या फूला फूला घूम रहा है ? जो मुझे भिखारी कहा तो जीता घर वापस नहीं जायेगा !'

अभी हाल में ही गंभीरलालजी ने अपनी मेहनत के एकत्रित पैसे से एक बिकते हुए खेत को खरीदने का निश्चय किया था।

'भिखारी, भिखारी ! सात बार भिखारी । रूपा...' नाम लेते हुए महेश जी का वाक्य पूरा होने के पहिले ही गंभीर जी ने छलाँग मार महेश जी की तलवार छीन ली, और उसे म्यान से निकाल एक झटके में महेश जी के दो टुकड़े कर दिये ।

मरते हुए महेश जी की चीख सम्पूर्ण गाँव में फैल गई। लोग एकत्रित हो उठे । दबाये हुए हाथ का मधुर मधुर दुःख सहता हुई रूपा ने जाना की गंभीर जी ने महेश को मार डाला। गंभीर जी शान्ती के साथ पुलिस के साथ चला गया । उस पर मुकदमा चला । रूपा से साक्षी दिलाई उसके कहने पर ही गंभीर जी ने महेश को मार डाला है। इससे गंभीर जी का गुनाह फाँसी के अनुसार न था । उसे आजन्म सजा हुई । तीन वर्षों तक मुकदमा चला और बीस-बाईस वर्ष कारागार में बीते। कारागार से मुक्त होने पर गाँव में आ बड़ के नीचे बैठे हुए गंभीर जी के आँखों की आगे यह सब पच्चीस वर्ष पूर्व का इतिहास फिर साक्षात् हो उठा । अपने लिये भिखारी कहा हुआ सम्बोधन आज उसने सहन कर लिया । आज तक उसने बहुत सहन भी किया था एक एकमात्र विचार ही उसके पैरों में बेड़ी डाले हुए थे—

रूपा कहाँ है ? क्या करती है ? कौन घर में है ? अभी तक इन प्रश्नों को किसी से पूछने का उसका साहस न हुआ था ।

❀ ❀ ❀ ❀

चन्द्रमा निकल चुका था किन्तु कुछ अधिक रात्रि होते ही उसके प्रकाश ने समूचे दृश्य को ही एक दूसरे रूप में परिवर्तित कर दिया था । संध्या के अंधकार में डूबा हुआ गाँव अब हँसता लग रहा था । परन्तु गंभीर जीका हृदय हँस नहीं रहा था । बड़ी कठिनता से वह अपने स्थान से उठा, जवाब दिये हुए पैरों से

उसने सम्पूर्ण गाँव का दौड़ कर चक्कर लगाया। पथ में उसे दो तीन मनुष्य मिले परन्तु उन लोगों ने गंभीर जी क पहिचाना नहीं। किसी का भी ध्यान उसकी ओर आकर्षित नहीं हुआ किसी के भी ध्यान को आकर्षित करने वाला कोई भी दिखाव उसमें अब न रहा।

ग्राम छोटा था। दो हिस्सों में पूरे गाँव का बास था। अपनी झोपड़ी खोजता हुआ गंभीर जी झोपड़ी वाले स्थान पर पहुँचा। परन्तु उसकी झोपड़ी का अस्तित्व वहाँ न था। इस स्थान पर एक छोटा पक्का मकान बन गया था। बहुत वर्षों तक पड़तर पड़ी भूमि कोई खाली रहने दे सकता है? उसकी झोपड़ी तो उसके कारावास में चले जाने के दो वर्ष पश्चात् ही नष्ट हो गई थी।

लम्बी श्वास भर गंभीर जी उस स्थल को एक टक देखता खड़ा रहा। जब वह बाँसुरी बजाता था उस समय भी चन्द्रमा इसी प्रकार अपनी ज्योत्स्ना सहित हँसता था। आज झोपड़ी खो भिखारी बने गंभीर जी के चन्द्रमा को कोई भी सहानुभूति न थी।

'कौन है?' किसी ने पड़ोस के मकान के खिड़की से पूछा।

'यह किसका घर है?' गंभीर जी ने पूछने वाले से प्रश्न किया।

घर के स्वामी ने अपना नाम बतलाया। गंभीर जी के पूर्वजों के दूर के नातेदारी में वे थे। गंभीर जी के दीर्घ काल के प्रवास के कारण वह उस स्थान के स्वामी बन बैठे थे।

'आजकी रात यहीं रहने की आज्ञा देंगे?' गंभीर जीने पूछा।

'यहाँ नहीं। चौधरी के चौबूतरे पर जाओ। अगर परिचय के न होगे तो तुम्हें नाम लिखाना होगा।'

भूमि के स्वामी को अपने ही भूमि से लौट जाना पड़ा।

छोटे झोपड़ी वाले स्थान को स्नेहभरी आँखों से देखता गंभीर जी वहाँ से हटा नहीं उस सम्बन्धी ने कठोरता पूर्वक कहा—

'जा, जा. चौतरे पर च ा जा। चौधरानी भोजन भी देगी।'

चौधरी के मकान के सामने विशाल मैदान था। मैदान में दस पन्द्रह बालक चाँदनी की ज्योत्स्ना में गुल्ली-डण्डा खेल रहे थे। चौतरा को वह पहिले से ही जानता था। उसके समय में भी परदेसियों के ठहरने के लिये यह स्थान गाँव वालों की ओर से था, और चौधरी उनकी आवभगत इत्यादि करता था। यह पूर्व की प्रथा इस समय भी बदले हुए गाँव में अभी तक चल रही थी। चौतरे के आगे एक बड़ा पेड़ था। चौतरे के ऊपर एक छप्पर पड़ा था।

गंभीर जी चोतरे पर नहीं गया। नीचे ही छिपे-छिपे बालकों का खेलना देख रहा था। आधी रात्रि में बालक अपने अपने घर जाने लगे। उसमें से एक बालक चौधरी के घर की ओर जाता दिखलाई दिया। झपट कर उसके निकट पहुँच गंभीर जी ने पूछ —

'भाई ' चौधरी जी घरमें हैं ?'

'जी ' सोये हैं। क्या काम है ?' बालक ने उत्तर दिया। तेरह चौदह वष का बालक व्यवहार कुशल था।

'कुछ नहीं। चौधरी जी से प्रातःकाल मिल लूँगा। चौधरी जी का नाम क्या है ?'

'गलवा जी !' बालक ने कहा। महेश जी का छोटा भाई गलवा जी से गंभीर जी परिचित था। दोनों में बचपन में अच्छी मित्रता थी।

'तुम गलवा जी के नातेदार हो ?

'हाँ ! मैं उनका पुत्र हूँ। तुम क्या चाहते हो ?'

'कुछ नहीं भाई! परन्तु बच्चे! तुम बड़े बुद्धिमान हो। अच्छा तुम्हारी माता जी का क्या नाम है?'

'रूपा! अच्छा चलो मैं तुम्हें सोने का स्थान बतलाऊँ।'

बालक चौतरे की ओर बढ़ा। यंत्रवत गंभीर जी भी उसके साथ गया। बालक ने सोने का स्थान बतलाया, एक चारपाई आगे कर दी।

'बच्चे तुम जाओ। मैं तो उन्हीं का आसामी हूँ।' गंभीर जी ने कहा। बालक को यह बात नया लगी। किसी भी दिन न देखा हुआ मनुष्य पिता का आसामी कैसे हो सकता है? गंभीर जी से कुछ थोड़ी बहुत बात कर वह घर के अन्दर चला गया।

रूपा के बाप की चौधराहट गलवा को जमाई होने के नाते प्राप्त हुई थी। गलवा जी शान्त, उद्योगी, प्रामाणिक और व्यवहार कुशल व्यक्ति था। गंभीर जी के कारावास में जाने के पश्चात् पाँच वर्ष तक रूपा रात दिन रोती रही किन्तु पिता के अन्त समय में उनके अनेक आग्रह पर उसने गलवा जी से विवाह करना स्वीकार कर लिया था। खेती, मत-दायित्व, चौधराहट और पशुओं इत्यादि की व्यवस्था अकेली रूपा से हो सके ऐसा न था। रोते ही रोते उसका विवाह हुआ। आजन्म कैदका दण्ड पाया हुआ गंभीर जी मरण समय ही छूट सकेगा ऐसी ही सबों की मान्यता थी। निःसन्देह सुशील स्वभाव वाला गलवा जी ने रूपा के दुःख भुलाने का सतत प्रयत्न किया। और रूपा ने भी उसके उपकार के बदले में गलवा जी की गृहस्थी व्यवस्थित रूप से चलाने लगी. किन्तु रूपाका तेज नष्ट हो चुका था। रूपा बदल गई थी। दिन में तो बिना कारण ही उसे एक बार रोना अवश्य आता था। इसके लिये अनेक उपचार किया गया परन्तु वह छूटा नहीं।

प्रातःकाल को गलवा जी सो कर उठे। उठने के साथ ही बाहर की ओर देखते ही चीख उठे। चीख सुन आस पास के सोये हुए नौकर जाग उठे। रूपा भी मकान के बाहर आ निकली। सब की दृष्टि सामने चौतरे के निकट वाले वृक्ष पर गई।

एक मनुष्य वृक्ष पर टँगा लटक रहा था उसके गले में फाँसी लगी थी, और फाँसी वाली डोरी का दूसरा छोर वृक्ष की डाल से बँधा था।

चौधरी घबरा गया। उसके चौधराहट में ऐसा प्रसङ्ग कभी प्रस्तुत नहीं हुआ था। उसने निकट के पुलिस थाने में एक आदमी से सूचना भेज दी। फिर गाँव के दो चार अग्रगणी युवकों को साथ ले वह लाश के निकट गया। कोई उसे पहिले पहचान न सका। अनेक तर्क वितर्क पश्चात् गाँव के एक पढ़े लिखे बालक को बुला उसका पंचनामा लिखा गया, और लटकती लाश को उतार कर चौतरे पर रक्खा गया।

पटेल के लड़के ने रात्रि में एक मनुष्य से मिलने का समाचार कहा और वह यही आदमी है बतलाया। परन्तु इस मृत मनुष्य की इच्छानुसार उसने एक सन्देशा अपनी माँ के सिवा और किसी दूसरे से कहा नहीं।

'माँ, तुम गम्भीर जी को जानती हो?

'हाँ, स्थिर आँखों से रूपा ने कहा।'

'उन्होंने कल रात को मुझसे तुम्हें कुछ कहने को कहा था।'

'क्या?' फटी फटी आँखों से रूपा ने प्रश्न किया।

'खेत में जो वचन दिया था वह गंभीर जी मरते समय तक भूला नहीं।'

'तुमने रात्रि में ही क्यों नहीं कहा?'

'उन्होंने मना किया था। और तुम सब लोग सो गई थीं इसलिये जगाया नहीं।'

रूपा कुछ बोली नहीं। सायंकाल थानेदार साहब आये। उन्होंने मिली लाश का पंचनामा किया गाँव वालों से पूछताछ की, और मरने वाला कौन है इसका निश्चय करने का प्रयत्न किया। लाश का मुख इतना बदल गया था कि उसको पहिचाना जा सके ऐसा न था।

थानेदार और साथ के सिपाही थके-पके हुए मरने वाले को गाली देते हुये रात्रि को सोये, परन्तु उनकी नींद भी पूरी होने के पहिले ही किसी मनुष्य ने फिर थानेदार साहब को जगा दिया।

'क्यों, अब इस समय क्या है?'

'साहब, फिर कोई दूसरा आदमी फाँसी लगा पेड़ पर लटका है।'

जिस डाल पर कल मनुष्य लटका था उसी डाल पर रूपा की लाश लटक रही है।

निकट ही गलबाजी माथे पर हाथ धरे बैठा है। लड़का रूपा का लटकता पैर पकड़कर रो रहा है—'माँ तू कहाँ गई?'

समूचा गाँव एकत्रित हो गया। सम्पूर्ण गाँव की रानी सदृश रूपा की इस प्रकार मृत्यु देख सभी रोने लगे।

थानेदार को शङ्का हुई कि एक ही तरीके से दोनोंकी मृत्यु में कोई भेद अवश्य है। गाँव के बुड्ढे लोगों से उन्होंने रूपा का पहिले का इतिहास पूछा। बुड्ढों को गम्भीर जी का नाम याद आया और रूपा के लड़के ने अपनी माँ को गम्भीर जी का कहा हुआ संदेशा बतलाया। तब मनुष्य वाली लाश गंभीर जी की ही है यह निश्चय हो गया। थानेदार साहब भी यह

इतिहास सुन व्यग्र हो उठे, और बच्चे का रोना सुन जेब से रुमाल निकाल आँखों से आँसू पोछने का नाट्य करने लगे।

'बच्चों चुप रहो। क्या ऐसे रोने से माँ लौट आयेगी ?' गलवाजी ने स्वयं रोते रोते बच्चों को चुप कराना चाहा, आँसू भरे लड़कों की तो एक ही माँग थी।

'माँ माँ ! मुझे माँ लाकर दो।'

परन्तु उनको माँ तो पुत्र और पति दोनों को छोड़ अपने प्रियतम के पास दौड़ गई थी। विवाहित रूपाके लिये जिसे जो रुचे वह कहे, परन्तु गलवाजी तो यही कहता—'रूपा तो सती थी ! वह कैसे यहाँ रहे ?'

अपने निकट के मित्रों के आगे रूपा की बातों के प्रसंग आते तो एक निःश्वास के साथ गलवाजी इस प्रकार भी कहता।

'अगर वह जीती होती तो मैं उसे आज्ञा दे देता और उसकी रुचि अनुसार कर देता। परन्तु वह तो अब देखने को भी न रह गई। क्यों रहे ? वह तो सती थी।'

जीवन में एक न हो सकने वाले दो प्रेमी, मृत्यु बाद एक हो गये। दोनों की एकत्रित लाशों ने एक चिता द्वारा स्वर्गारोहण किया। गलवा जी ने एक सुन्दर-सा चौतरा चिता-स्थान पर स्मृति में निर्माण कराया। मनचाहा पति प्राप्ति के लिये अब भी गाँव की लड़कियाँ रूपा सती की मानता मानती हैं।

क्या वह पागल था ?

'सुरेन्द्र पागल हो जायगा, ऐसा मुझे मालूम होता है।'

'किस कारणवश ?'

'सुनते नहीं, अंदरके कमरे में अकेला ही बोला करता है ?'

'किसी डाक्टर को दिखलाओ।'

'अवश्य ! कोई रास्ता निकालना पड़ेगा।'

'एक वर्ष हो गया किन्तु अभी तक विवाह के लिये इन्कार ही करता है।'

'इसके इलाज के लिये किसी डाक्टर का निश्चय करना चाहिये।

सुरेन्द्र अध्यापक है। शिक्षक के नाते उसने उच्च प्रतिभाका परिचय दिया है। सहयोगी शिक्षकों में उसका सम्मानित पद है, इतना ही नहीं उसे सहयोगियों का प्रेम भी प्राप्त है। पाठशालेका वातावरण एकदम ईर्षा-मुक्त नहीं होता। प्रधान शिक्षक की सहानुभूति और विद्यार्थियों का अनुराग ईर्षा की अग्नि-शिखाओं को सदा प्रज्वलित रखता है। किन्तु सुरेन्द्र के प्रति किसी का भी दुर्भाव न था। विद्यार्थियों में तो उसके प्रति एक प्रकार का मोह था। नौकरी करते हुए उसे पाँच वर्ष हो गये।

एकाएक उसकी पत्नी का स्वर्गवास हो गया। बहुतों पर यह विपत्ति आती रहती है। ऐसे सभी लोगों को दुःख भी होता है

सुरेन्द्र भी दुःखी हुआ।

हृदय पर जिसका अधिकार है, उसे अधिक रुलाई नहीं आती। प्रेम द्वारा अधिकृत हुआ मनुष्य बहुत अधिक रोता तथा उदासीन रहता है। परिचित सम्बन्धी तथा मित्र सभी लोग उसके प्रेम-प्रदर्शन अनुसार न्यूनाधिक सहानुभूति दर्शाते हैं और फिर भी यदि उसकी उदासीनता उसी प्रकार बनी रहती है तो वह उससे ऊब जाते हैं। सुरेन्द्र की भी उदासी छः मास तक बनी रही। उसको सांत्वना दे, दूसरे कार्यों में बहला कर उसके दुःख को कम कराने का प्रयत्न करते हुए उसके दोनों अंतरङ्ग मित्र मनहर तथा भानु ऊब उठे और थकावट अनुभव करने लगे। इतने में एकाएक उन्हें लगा कि सुरेन्द्र के मुख पर परिवर्तन हुआ है। छः माह तक हँसी से अनभिज्ञ सुरेन्द्र हँसा। इतना ही नहीं, उसने शिक्षा सम्बन्धी अनेक चर्चायें भी उत्साहपूर्वक की।

दुःख के ठीक उतार का ठीक समय तथा सुरेन्द्र को प्रफुल्लित देख मित्र मण्डली खुशी से विकसित हो उठी। नित्य प्रात उसका शरीर भी पुराने ढाँचेकी ओर बढ़ा। छः मास तककी उदासीनता क्या एक प्रेमी के लिये कम है? जो होता आया है सो होता है। समय बीतने के साथ ही साथ घाव भी भरता जाता है यह प्रकृति का नियम है।

आनन्द निमग्न हो बात करते हुए सुरेन्द्र से भानु ने अवसर देखकर पूछा—

'कैसे हो? क्या विचार है?'

भानु की आँखों में सहानुभूति और हँसी एक साथ देख सुरेन्द्र प्रश्न का लक्ष्य न समझ सका।

'यह क्या पूछ रहे हो? विचार कैसा?'

'जैसे कुछ समझते ही नहीं। हमारे मुँह से कहलाने का विचार है; क्यों, यही न?' मनहर ने सहानुभूति और मजाक को आगे चलाने के लिये प्रोत्साहन दिया।

तुम दोनों क्या कहना चाहते हो उसे स्पष्ट करो। मैं कोई कूट राजनीतज्ञ नहीं हूँ कि तुम्हारी अगम्य वाणी समझ सकूँ।' सुरेन्द्र ने कहा।

'लो भाई। यह स्पष्ट बात कहलाना चाहते हैं। तुम इन्हें बतला दो न भानु!' मनहर ने बातों का व्यूह तोड़ मैदान साफ कर देने की आज्ञा दी।

'बतलाओ, अब तुम्हारे लिये क्या प्रबन्ध किया जाय?' भानु ने व्यवहार कुशलता का भाव मुँह पर लाते हुए पूछा।

'परन्तु किस बात का प्रबन्ध? है क्या?' हँसते हँसते सुरेन्द्र ने पूछा।

उसके हँसने से उत्तेजित हो कर भानु ने अगम्य वातावरण को मूर्त बनाते हुए कहा—

'तुम्हारे विवाह की...। और दूसरा क्या है?'

'स्त्री-सुख बड़े भाग्य से मिलता है। विशेषतः दूसरी तीसरी का।' सुरेन्द्र के मुख पर सहज ही आनन्द तथा साधारण उदासीनता और थोड़ा सा खेद देखने की अभिलाषा रखने वाले दोनों मित्र सुरेन्द्र का मुँह देख चौंक उठे। सुरेन्द्र की आँखों में प्रकाश ही नहीं रह गया था। क्षण ही भर में प्रकाश फिर लौटा। सुरेन्द्र की अर्थहीन आँखे अर्थपूर्ण हो उठीं। उसने प्रश्न किया—

'मेरे लिये लड़की की खोज? किसलिये?'

'देखो भाई! अभी उम्र छोटी है। सारा जीवन अकेले बिताना सम्भव नहीं है।' भानु ने कहा।

'और इसमें जोखिम भी है।' जगतकी नीति के प्रति चिन्ता तथा पुरानी कहावत 'काजी जी दुबले क्यों शहर के अंदेशे' को प्रत्यक्ष करते हुए मनहर ने कहा।

'परन्तु किसने कहा कि मैं अकेला हूँ?' सुरेन्द्रने आश्चर्यान्वित होते हुए पूछा।

'तुम और तुम्हारे बूढ़े नौकर के सिवा घर में दूसरा कौन है?'

'मेरी पत्नी है।' सुरेन्द्र ने दृढ़ स्वरमें कहा।

'तुमने फिर विवाह कर लिया? हम लोगों को सूचना भी न दिया?'

'तुम लोग पागल हो गये हो क्या? एक साथ ही मेरा दो स्त्रियों से विवाह करना चाहते हो? हा...हा...हा...' सुरेन्द्र ठहाका मार कर हँसा।

उसने मित्रों को पागल कहा, किन्तु उसी की हँसी में एक प्रकार का पागलपन देख मित्रगण चौंके। सुरेन्द्र की पत्नी के स्वर्गवास के पश्चात् किसी भी स्त्री की परछाईं सरीखा भी उसके घर में उन लोगों को दिखलाई न दी थी। फिर यह सुरेन्द्र क्या कह रहा है?

कुछ देर बाद दोनों मित्र घर से बाहर निकले। सुरेन्द्र का बूढ़ा नौकर सामने मिला। मनहर ने उससे पूछा—

'अरे, घर में कौन है?'

'हम और हमारे साहब।'

'कोई स्त्री है न?'

'नहीं साहब! मैं रात दिन यहीं का यहीं रहता हूँ, पर आज तक किसी स्त्री को नहीं देखा?'

'कभी शायद कोई स्त्री आती हो?'

'नहीं बाबा ! स्त्री का नाम या निशान यहाँ कुछ भी नहीं है। आप लोग मालिक को समझावें। समझ जाँय तो सब ठीक हो जाय।'

'तब सुरेन्द्र ने क्यों कहा ?' दोनों मित्र एक दूसरे से परस्पर प्रश्न करते हुए चले गये।

❀ ❀ ❀ ❀

नौकर घर आया। उसने कोना कोना देख डाला। बिछौने का बण्डल और किवाड़ के पीछे के भाग में तलाश किया, पलंग के नीचे और रसोई के अन्दर ढूँढ़ डाला। वहाँ कोई भी न था।

घर कोई बड़ा नहीं था। अगले हिस्से में सोने की कोठरी और एक रसोई तथा उसके ऊपर के खण्ड में एक छत इतना ही हिस्सा सुरेन्द्र के कब्जे में था। इनके शोध में कुछ विशेष समय लगे ऐसा नहीं है। सुरेन्द्र के सिवा उसे कोई दिखलाई न दिया। वह भी एक चित्र पर दृष्टि गड़ाये हुए बैठा था। उसे नहीं मालूम था कि उसका बूढ़ा नौकर घर में किसी अनजानी स्त्री को खोज रहा है।

थोड़ी देर ठहर कर फिर नौकरने सुरेन्द्र की कोठरी में भीतर झाँका। सुरेन्द्र जैसे का तैसा बैठा था। सिर्फ वह कुछ बोल रहा है ऐसा सुनाई दिया।

'सभों की यह धारणा है कि तू स्वर्गवासी हो गई। क्या यह सच है ?' सुरेन्द्र किसी से पूछ रहा था।

'मूर्ख मित्रों ! इनको कैसे बताऊँ कि तू तो यहाँ है। जीती, जागती, हँसती हुई।' सुरेन्द्र कहता ही गया।

'न बताऊँ ? ठीक है, तुम्हारी इच्छानुसार ही करूँगा। परन्तु फिर हँसते मुख हमारी ओर देखती रहो।'

वृद्ध नौकर थरथर काँपने लगा। युवक, छोटी उम्रके मालिक को उसकी मृत स्त्रीने अवश्य छल लिया। वह वहाँसे चला गया, और रसोई घर में जाकर घी का दीपक बाल कर माता की प्रार्थना को बैठा।

सचमुच सुरेन्द्र की पत्नी सुरेन्द्र को लगी है !...अथवा सुरेन्द्र अपनी मृत पत्नी को छल रहा है!

सुरेन्द्र अपनी पत्नी को बहुत प्यार करता है। उसकी मृत्यु उसे असह्य हो रही थी। पत्नी का मुख उसकी जागृत अवस्था में उसकी आँखों के आगे फिरा करता था। और स्वप्न में तो बार बार वह उसका स्पर्श कर जाती थी। एक रात्रि पत्नी के सदृश रूप देख वह जाग उठा। नेत्रों के समक्ष उसकी रानी खड़ी है उसने देखा कि जागृत अथवा स्वप्न का भेद भूल वह सामने खड़ी पत्नी को स्थिर दृष्टि से निहारता रहा। यह क्या चित्र है ? नहीं...!

पत्नी की दृष्टि में जीवन ज्योति थी; अथवा मुख थोड़ा थोड़ा स्मित कर रहा था। वह क्यों इस प्रकार एकाग्र दृष्टि से देख रही है ? सुरेन्द्र ने पूछा—

'तुम इधर क्या देखा करती हो ?'

पत्नी अधिकतर इसी प्रकार पति के मुख की ओर दृष्टि गड़ाकर बार बार उसका मुख देखा करती थी और जब इस प्रकार से देखते हुए उसकी दृष्टि पति की दृष्टि से मिल जाता है तब वह शरमा कर अपना मुख ढाँक लेती थी।

पति का प्रश्न सुन आज भी वह सकुचा गई। सुरेन्द्र को लगा कि वह घूँघट में मुँह ढाँक लेगी।

'कितना शरमाती हो ! लो, मैं आँख मूँद लेता हूँ, और तुम हमारे निकट आओ, धीरे धीरे।'

सुरेन्द्र आँख मूँद सो गया। उसकी पत्नी उसके निकट आई अथवा नहीं यह उसने किसीसे भी नहीं कहा। परन्तु दूसरे दिन सबने देखा कि उसका मुख प्रसन्नतामें डूबा हुआ था।

इससे सबने समझा कि सुरेन्द्रका घाव भरा। फिर विवाह करने की सम्मति देने का समय निकट आ गया है, ऐसा उसके मित्रों ने समझा। यह अवसर देख एक आनन्द भरे क्षण में उसके मित्रों ने उसे सम्मति दी और वह ठीक थी। परन्तु उत्तर में नकारात्मक उत्तर मिला सुरेन्द्र अपनी पत्नी की मृत्यु हो जाने को मानता हो ऐसा नहीं लगा।

मित्रों के जाने के पश्चात् सुरेन्द्र एकदम अपने सोने वाले कमरे में दौड़ कर आया। उसका मुख उतर गया था, उसका हृदय धड़क रहा था। हाँ, एक दिन उसे भयङ्कर स्वप्न दिखलाई दिया था। उसकी पत्नीकी मृत्युका भयानक दृश्य उसके विचारों में आ उसके मन को आन्दोलित कर रहा था। वह विचारों में डूब उतरा रहा था। निःश्वास छोड़ कर उसने सामान्यतः अपनी दृष्टि ऊपर की ओर की। समक्ष पत्नी का हँसता हुआ मुख था।

'किसकी मृत्यु ? और यह सब क्या बातें हैं ? मुझ पर यह कैसा पागलपन सवार है।

'क्या हुआ ?' मानों पत्नी ने प्रश्न किया हो ऐसी सुरेन्द्र ने भनभनाहट सुनी। उसने उत्तर दिया—

'सभी की यह धारणा है कि तू स्वर्ग गई। क्या यह सत्य है ?'

पत्नी ने सिर हिला कर अस्वीकृति दी।

❀ ❀ ❀ ❀

नौकर का भय सहज ही कम हुआ। कारण सुरेन्द्र कमरे में से बाहर आकर उसे बुला रहा था।

'मालिक तुम्हें क्या हो गया है ?' नौकर ने वात्सल्यभाव से पूछा।

'कुछ तो नहीं, क्यों ?'

'अन्दर क्या बोल रहे थे ?'

'वह तो ज़रा उसके साथ बातें कर रहा था।'

'किसके साथ ?'

'मूर्ख, समझता नहीं ?'

नौकर मन में फिर काँप उठा। शाम होते होते कमरे की सफाई के लिये जाते समय उसका पैर पीछे की ओर लौट रहा था। जितने देवताओं का नाम उसे आता था उतने सभी देवों को स्मरण करता हुआ वह अन्दर गया, पर वहाँ कोई भी न था। कुर्सी और पलङ्ग के सामने की ओर एक मात्र एक चित्र था। घड़ी भर तक वह उसे देखता रहा।

'माँ, कितनी अच्छी थी ! जैसे लक्ष्मी का अवतार।'

किन्तु नौकर का लक्ष सुरेन्द्र की ओर था। कमरे में आकर सुरेन्द्र क्या करता है, क्या बोलता है, इसका अब वह नित्य ध्यान रखने लगा। सुरेन्द्र बाहर आता तब किसी को कोई बात समझ में न आती थी। वह प्रसन्न चित्त, वाचाल तथा उद्योगी बन गया था। तथापि वह अनेक बार सोने के कमरे में से निकलता था।

चित्र के साथ नित्य प्रति बातचीत बढ़ती जाती थी। घर में आने के साथ अपनी प्रियतमा को सूचित करने के लिये 'मैं भीतर आ रहा हूँ' कहकर वह अन्दर जाता। घर से बाहर जाने के समय वह थोड़ा जोर से कहता—

'मैं थोड़ा बाहर हो आऊँ, देर नहीं करूँगा।'

नौकर को समझ नहीं पड़ता था। इस प्रकार शिक्षित सुरेन्द्र हवामें चित्र को देखते हुए जो बात करता है यह क्या है ? क्षण भर बात होती, घड़ी भर बात होती, किसी दिन दिनभर बात हो जाती थी किन्तु चित्र जैसे जीती पत्नी जैसी हो इस प्रकार सतत उसका सानिध्य और सतत वार्तालाप चलता रहा। तब उसके दिमाग की अस्थिरता के विषय में शंका हो या निश्चय भी हो जाय तो इसमें क्या नवीनता है ?

भानु तथा मनहर को यह सब सूचना नौकर दिया करता था। उसे भी सुरेन्द्र का पागलपन सहज ही दिखलाई पड़ता था। फिर विवाह कर लेने से उसका पागलपन घट जायगा। ऐसी मान्यता वाले अपने मित्रों के आग्रह की वह हँसी उड़ाता, इतना ही नहीं, वह मित्रों से हँसी करना ही पागलपन मानता था। किसी-किसी समय वह उत्तर देता।

'एक पत्नी होते हुए दूसरी बार विवाह करूँ यह हमारी जाति में चलन नहीं है।'

सम्पूर्ण संसार जानता था कि उसकी पत्नी तो संसार से कूच कर चुकी है। परन्तु सुरेन्द्र को तो निश्चय:था कि उसकी पत्नी जीवित है।

'कहाँ है तुम्हारी पत्नी ?' कभी कभी भानु पूछता।

'अन्दर है।'

'बाहर बुलाओ न।'

यह मित्रों का आग्रह सुन सुरेन्द्र किसी समय गम्भीर बन जाता था और हँस कर उत्तर देता था।

'तुम्हारे जैसे भिक्षुक मित्रों से मैं बचाना चाहता हूँ।'

उसका मुख तथा वाचाल उत्तर दोनों ही मित्रों के भय में वृद्धि ही करते थे। निश्चय सुरेन्द्र पागल हो गया है।

पागलपन की एक ही औषधि थी—दूसरा विवाह। वह सुरेन्द्र के लिये अशक्य था। दूसरा इलाज था डाक्टरों की सम्मति द्वारा।

रोगी अजीब था। वह स्वयं अपना दर्द नहीं स्वीकार करता था। इसलिये बहुत ही कुशलता से उसकी जाँच करवानी थी। डाक्टर ने सम्मति दी।

'चित्र का पागलपन है तो उसे स्थानान्तर कर देखो न!'

मित्रों ने योजना कार्यान्वित करने की तैयारी की। एक दिन नौकर की मदद से उसने मृत पत्नी का चित्र वहाँ से हटा दिया और सुरेन्द्र के आने की प्रतीक्षा करते हुए वहाँ बैठे रहे।

सुरेन्द्र अन्यमनस्क भाव सा घर में आया। संसार को मृत लगती उसकी पत्नी चित्र में दिन प्रतिदिन अधिक जीवित बनती जा रही थी। उसके घर के अगले भाग में बैठे मित्रों को उसने देखा भी नहीं और एकदम सोने के कमरे में 'मैं आ रहा हूँ!' कह वह दौड़ा।

दोनों मित्र इस पागलपन को देखकर हँसे। परन्तु उनका हास्य क्षणिक था। उनमें से किसी के भी बोलने के पहले अन्दर एक धमाका हुआ। दोनों खड़े हो कर एक दम अन्दर दौड़ गये। सुरेन्द्र अचेतनावस्था में पृथ्वी पर पड़ा हुआ था। बहुत प्रयत्न के बाद चेतना लौटी। उसने चित्र वाले रिक्त स्थान पर दृष्टि डाली और धीमे स्वर में पूछा—

'वह कहाँ गई?'

'कौन?'

'रमा !'

'रमा भाभी का तो स्वर्गवास हो चुका न ? यह तुम नहीं जानते ?'

सुरेन्द्र की आँख स्थिर हो गई। फिर उसने चित्रवाले स्थान की ओर आँख फेरी। स्थान खाली था। निश्चय आज उसकी पत्नी मृत समान बन गई। उसने आँख मूँद माथा जमीन पर लुढ़का दिया।

भानु चीख उठा—

'मनहर ! जा, जा, दौड़, डाक्टर बुला, सुरेन्द्रकी नाड़ी छूट रही है।'

मनहर डाक्टर को बुलाने दौड़ा, नौकर उस चित्र को वापस लाने के लिये दौड़ा।

जीवन क्या इतना ही है ? पंचेन्द्रिय जो अनुभव करता है वह है जीवन कि कल्पना जो अनुभव करती है वह जीवन है ? सत्य कौन ?

ओस की बूँद

'तुम क्यों हँसी ?'

'तुम्हारा नित्य का आदेश है कि मैं हँसा करूँ।'

निश्चय, बिना इसके यहाँ की आब-हवा तुम्हें कुछ भी लाभ न पहुँचायेगी।'

मृणालवती उसकी परिचारिका, डाक्टर, निर्मला नित्य सुन्दर प्रभात में टहलने निकलते थे। यह इनका दैनिक क्रम था। छः मास पूर्व से मृणालवती लेडी-डाक्टर निर्मला को साथ लेकर यहाँ निवास के लिये आई हैं। वह दो वर्षों से अस्वस्थ है। बहुतेरी सभी औषधियों का सेवन किया, डाक्टर और वैद्यों की अनेक सभायें अपने घर पर करा कर हजारों लुटाया, परन्तु मृणालवतीको कोई लाभ न हुआ। अन्त में कदाचित नगर से बाहर गाँव की हवा से लाभ हो इस अभिप्राय से गाँव के एक सुन्दर बँगले में आकर यह लोग रह रहे हैं। साथ में निर्मला नाम की अनुकूल स्वभाव वाली, हँस मुखी तथा कार्य में दक्ष एक तीस वर्ष की लेडी-डाक्टर को उपचार के लिये साथ ले आई है।

मृणालवती के मुख पर घनी उदासी छायी रहती है, वह बहुत ही कम बोलती और कभी हँसती नहीं। मशीन के सदृश डाक्टर के सुझाव अनुसार नियमतः उसकी दिनचर्य्या है।

औषधि खाना, टहलने जाना, आराम करना, चित्रों से मन बहलाना तथा किसी सुन्दर पुस्तक का अवलोकन करना इत्यादि डाक्टर निर्मला के आदेश अनुसार होता रहता है। परन्तु एक आज्ञा डाक्टर की पालन नहीं होती।

'तुम्हें हर समय प्रसन्न रहना चाहिये।' निर्मला आदेश देती, परन्तु उसके प्रति-उत्तर में मृणालवती के मुख पर घोर उदासी छा जाती थी।

आज छः मास के पश्चात् निर्मला ने प्रथम बार मृणालवती को हँसते देखा। उसे आश्चर्य मालूम हुआ। इसलिये उसने पूछा—

'तुम क्यों हँसी?'

'तुम्हारा नित्य का आदेश है कि मैं हँसा करूँ।' मृणाल ने उत्तर दिया। इतना लम्बा वाक्य मृणालवती कदाचित ही बोल पाती। उसके आदेश का प्रभाव है यह सुन उत्साहित होकर डाक्टर निमला ने अपने आदेश की गम्भीरता प्रकट की।

'निश्चय, बिना इसके यहाँ की आबहवा तुम्हें कुछ भी लाभ नहीं पहुँचा सकेगी।'

मृणाल के मुँह पर फिर घोर उदासी छा गई। उसकी हँसी तो नाम मात्र की मुख की चेष्टा थी। उसने कहा—

'मेरे में कुछ परिवर्तन नहीं देख रही हो?'

'तुम अच्छी न हो सकोगी, अगर तुमने ऐसा निश्चय कर लिया है तो कठिन होगा। दो या चार वर्ष सब कोई मिल अच्छी तरह तुम्हारी परिचर्य्या करेंगे पर पीछे व्यङ्ग करेंगे, इससे तुम्हारा जीवन तुम्हें ही भारी जान पड़ेगा।'

'पर अब भी तो मेरा जीवन मेरे लिये भारी ही है।'

'किस कारण वश तुम्हें भारी लग रहा है ? अभी तक तुम बीस वर्ष की भी तो नहीं हुई हो। मैं तुम्हें एक सच्ची सम्मति दूँ ? निर्मला ने प्रश्न किया।

'जो तुम कहोगी ध्यानपूर्वक सुनूँगी।' मृणालवतीने निराशा-पूर्ण उत्तर दिया।

'अगर तुम्हें अपना सब दुःख मिटाना हो तो जल्दी से विवाह कर लो।' निर्मला ने मृणाल को सब दुःखों की सर्वोपरि औषधि बतलाई। धीमी गति से चलती मृणाल एकाएक बैठ गई। सूर्य्य के धुँधले प्रकाश में घास के ऊपर चमकते सुन्दर मोती सदृश ओस के बिन्दु बिखरे थे जिसे निमला मृणाल को दिखला रही थी। मृणाल दुर्बल हो गई थी, परन्तु एकाएक धरती पर बैठ जाने का यह प्रथम प्रसङ्ग था। निमला भी मृणालवती के साथ ही घास पर बैठ गई, और उसके मस्तक और शरीर को अपने शरीर पर टिका लिया। आज मृणाल के मानसिक दर्द की पूर्ण चिकित्सा वह करेगी ऐसा निर्मला ने निश्चय किया, निर्बलता के सिवा और कोई कष्ट न था और यह निर्बलता किसी मानसिक दुःख का ही कारण है; ऐसा निश्चय हुआ। फिर भी यह निर्बलता क्षय अथवा पाण्डु रोग की पूर्व पृष्ठ-भूमि ही सी थी।

कुछ क्षण बाद मृणाल ने कहा, 'तुमने विवाह क्यों नहीं किया ?'

तीस वर्ष की कुमारी निर्मला को अब विवाह करने की इच्छा नहीं थी या पहिले भी कभी नहीं थी इस सम्बन्ध में उसने किसी से कुछ नहीं कहा था। किन्तु कठिन से कठिन संयमी और शील स्वभाव वाली स्त्री को भी विवाह का शब्द मुख पर लाली ला देता है। निर्मला का रङ्ग विशेष गोरा तो न

था। फिर भी इस ललाई को सरलतापूर्वक छिपा सके ऐसा था। अथवा विवाह शब्द कँपकँपी उत्पन्न कर देने वाला उच्चारण भय रहित प्रतिध्वनि जैसा लगता था, यह मान लेने में भी कोई अत्युक्ति न होगी।

'देखो, डाक्टरी व्यवसाय वाली स्त्री पत्नी के रूप में प्रायः निरुपयोगी होती है। अपने व्यवसाय के प्रति पूर्ण कर्तव्य का पालन करना हो तो डाक्टर को विवाह नहीं करना चाहिये। हम अपने कार्य में इतने दत्तचित्त रहते हैं कि विवाह के विषय में विचार करने का भी समय नहीं मिलता। आपकी बात अलग है। जीवन में रसके संचार की विशेष आवश्यकता है और वह विवाह ही ला सकता है। आपके भाई कह रहे थे कि कितने बड़े बड़े धनवान, विद्वान तथा रसिक पुरुष आपके साथ विवाह के लिए लालायित हैं।'

उपरोक्त बातों से निर्मला ने मृणाल को उत्तेजित करने का प्रयत्न किया।

'पर मुझे तो कोई पुरुष रुचता ही नहीं।' मृणाल बोली।

'क्यों ?'

मृणाल फिर हँसी। उसके हँसी में हृदय के अन्दर के शोक के किरण को निर्मला ने देखा।

'कारण कहूँ ? तुम्हारे धनवानों के धन और रसिकों की रसिकता इस ओस के बूँद के सदृश ही मुझे लगती है। देखो, इस ओस को! क्या मोती से कम सुन्दर है ?'

कुछ समय रुककर वह फिर बोली—

सूर्य की किरणों के समावेश से हीरों के कणों के प्रकाश को भी लज्जित करने वाली ज्योति पाने वाली यह बूँदे हैं। यह लो! मैंने सहज ही जरा इसे उँगली लगा दी इतने में ही यह

मायावी मोती नष्ट हो जाती है, अपना अस्तित्व खो बद-रंग होती हुई पृथ्वी में समा जाती है। पर तुम्हारे धनवान पुरुषों का धन और रसिकों की रसिकता तो स्पर्श होने से प्रथम ही नष्ट हो जाते हैं। यही देख मैं उस समय हँसी थी।' मृणाल ने कहा।

'सब पुरुष क्या ऐसे ही होते हैं?' निर्मला ने पुरुषों का पक्ष लिया—

'तुम डाक्टर लोग पुरुष को क्या जानोगी? प्रत्येक पुरुष को ओस सा ही समझो। जब तक तुमने स्पर्श नहीं किया तभी तक चमकता हीरा और मोती समझो। तुम्हारे स्पर्श का इशारा होते ही वह अपनी रंग, रौगन खो हरी धरती से ऊसर पृथ्वी के समान कुरूप बन जाते हैं।' मृणाल बोली।

'किस बात पर ऐसा कहती हो?' युक्ति द्वारा डाक्टर निर्मलाने अपने रोगी को रोग का रहस्य कहने के लिये आवाहन किया।

❀ ❀ ❀ ❀

'तुमसे कहूँ? परन्तु देखो, भाई से इस बात को कहना नहीं। तुमने इतनी अधिक ममता मुझसे दिखाई है इसलिए मैं अपना हृदय खोलकर तुम्हारे ही सामने प्रथम और अंतिम बार रख रही हूँ।

मैं छोटी थी उस समय बड़ी चंचल थी। धनवान माँ बाप के बच्चों को पाजीपन का जन्मसिद्ध अधिकार है। मैं मकान के चारों ओर खेला करती, कभी कभी गलियों में भी दूसरी बालिकाओं के साथ चली जाती, और कभी कभी वृक्षों पर चढ़-कर बैठ जाती। मैं जब करीब नौ वर्ष की थी उस समय हमारे घर के पड़ोस में एक गृहस्थ रहने के लिए आये। कितनी ही बालिकाओं के साथ मैं खेला करती थी। वहाँ एक घुँघराले

बाल वाला बालक आया। उसमें छटा थी, आँखों में मस्ती थी। यह सब मैं आज कह रही हूँ, परन्तु उस दिन उसकी सूरत देखते ही उसने मेरे हृदय में स्थान कर लिया था। इतना उस समय मेरी समझ में आया। यह बालक हाथ में एक छोटी छड़ी रखता था, और अकेले ही वह घूमता हुआ लकड़ी को फिराता बार बार एक हाथ से दूसरे हाथ में लेता इस प्रकार पुरुषार्थ का प्रदर्शन करता था कि मैं तो उसे देखती ही रह जाती थी।

एक दिन मैंने साहस कर उससे पूछा—'इस प्रकार लकड़ी फिराना क्या तुम मुझे न सिखलाओगे ?'

'लड़कियोंको क्या पटा खेलना आयेगा ?' गर्वयुक्त हो मुझसे उसने कहा। मुझे उसका गर्व रुचा। 'इसके लिए तो अखाड़े में जाना पड़ता है; उस्ताद से सीखना पड़ता है। और भी कितनी ही बाधायें आती हैं। अब मुझे इतना काफी आ गया है कि दस मनुष्य भी लकड़ी से मारें तो मुझे चोट नहीं लगे और कदाचित हमारी ढाल भी हमारे पास हो तो फिर जितने चाहे आदमी मिलकर क्यों न आयें !'

इस वीर किशोर के पास ढाल भी है इस विचार के आते ही मुझे उसके प्रति विशेष आदर उत्पन्न हुआ।

'तुम मुझे ढाल दिखलाना।'

दूसरे दिन वह चमड़े की मढ़ी दो ढाल और दो लकड़ी ले आया और अत्यन्त गम्भीरतापूर्वक तथा सावधानी से छिपा कर उसने मुझे सब समझाया।

'अगर तुम किसी से न कहोगी तो मैं तुम्हें पटा खेलना सिखाऊँगा।' उसने चारो ओर देखा, मैदान में कोई दिखलाई नहीं पड़ा। तब उसने एक ढाल और एक लकड़ी मुझे दी,

और ढाल किसप्रकार रखना, पैर कैसे रखना, लकड़ी किस प्रकार ढाल पर रोकना ये सब उसने मुझे बतलाया; और फिर उसने दाँव भी सिखलाना प्रारम्भ किया।

'यह तमाँच, कमर, चीर, शीर*..., अरे! ढाल तो गिर जाती है, थोड़ा जोर से पकड़ो। लकड़ी तो इस पर जोर से गिरती है, इससे ढाल गिर जाती है। यह देखो मेरे हाथमें शाल पड़ गई।'

मुझे तो शाल पड़ गई और वह हँस रहा था। मैंने ढाल और लकड़ी फेंक दी, और गुस्सा होकर भागने के लिए प्रस्तुत हुई। उसने मेरा हाथ पकड़ लिया तथा अनेक प्रकार से वह मनाने लगा।

'अब मैं तुम्हें चोट लगे ऐसा नहीं सिखाऊँगा। इतने में ही बिगड़ गई? मेरी मृणाल...!'

मृणालवती ने अपनी बात यहीं बन्द कर दी। उसके मुख पर घबराहट दिखलाई दी। निर्मला ने उसके मुख पर के भावों को देखा। बात कहते कहते मृणालवती ने बहुत दिन बीते युग की बातों में जा पहुँची, जिसने उसके अन्तःकरण तक को दुःखी बना दिया। ऐसा निर्मला को ज्ञान हुआ। अपने मृणालवती को सहज ही उत्तेजित किया—

'इसमें लज्जा नहीं।'

'मैं लज्जित नहीं होती। परन्तु उसके इस वाक्य ने मेरे उस बाल-सुलभ हृदय को किस प्रकार जीत लिया इसकी मुझे याद हो आई। उसके साथ के संसर्ग की बात थोड़े में ही

---

* लकड़ी के पटे के दावों के नाम हैं।

समाप्त कर देती हूँ। एक वर्ष बाद मेरी माता का स्वर्गवास हो गया, और दूसरे वर्ष पिता जी भी स्वर्ग सिधार गये। भाई का मेरे ऊपर विशेष स्नेह था। अब भी तुम देख रही हो कि मेरे लिए वह किस पकार धन खर्च रहा है, उन्होंने मेरे पिता का व्यवसाय चालू रक्खा। भारत के अलग अलग नगरों में कई गद्दियाँ थी। भाई ने उन सब स्थानों पर स्वयं, जाकर सब कार्य की जाँच की। मुसाफिरी में वह सदा मुझे अपने साथ रखते थे। विलायत जाने के लिए भाभी भी उत्सुक थीं इस लिए हम सब लोग यूरोप गये। यूरोप से अमेरिका भ्रमण करने के पश्चात् जापान और चीन होते हुये भारत लौटे। इस पर्यटन में भाई ने अपना व्यवसाय बढ़ाया और भारत में होते हुये भी अपने विदेश के व्यापार की भी बराबर देख रेख किया करते थे। जब मैं भारत लौटी तो १७ वर्ष की हो गई थी। इस बीच के बीते समय में मैं उस घुँघराले बाल वाले बालक को भूल न सकी, उसका कोयल सरीखा मीठा स्वर हमारे कान में एक अखण्ड संगीत सा गूँजा करता था। उम्र के बढ़ने के साथ ही साथ यह मुझे भारी पागलपन सा प्रतीत होने लगा। बालपन का वह निर्दोष संयोग इस प्रकार मेरे मन में घर कर लेगा यह मुझे स्वप्न में भी मालूम न था।

किन्तु हमारी भाभी मेरे विवाह के विषय में जब जब भी बात निकालतीं तब तब वह काली जुल्फी वाला किशोर, पटा भाँजता शूरवीर आँखों के समक्ष दृश्यवान हो उठता; और मैं सदा टालमटोल कर देती थी।

❀ ❀ ❀ ❀

'थकी तो नहीं बहन ?' निर्मला ने पूछा।

'थकावट होगी तो तुम्हारी औषधि से मिट जायगी। तुम्हें आलस्य भाव हो तो मैं अपनी बात बन्द कर दूँ ?' मृणालवती ने प्रश्न किया।

'आज तो बहुत सी बातें पूरी सुनी। तुम्हारा रोग भी पहिचान गयी।'

'हाँ मेरा रोग यही है। एक दिन मैं भाई और भाभी के साथ घोड़ा गाड़ी से हवा खाकर घर लौट आ बरसाती में उतरी तो देखा कि दूसरी किसी की गाड़ी वहाँ खड़ी है। यहाँ तक कि दोनों गाड़ियों के घोड़े लड़ पड़े, लगामें सहज ही टूट गईं और दोनों गाड़ी ने बगीचों की दीवारों से जोर से ठोकर खाई। घोड़ा ने तूफान मचा दिया। कोचवान और रईसों से कुछ करते न बन पड़ा—और खूब शोर मच उठा।

इतने में ही हमारे घरसे एक युवक निकला और लड़ते घोड़ों के बीच जाकर दोनों की लगाम पकड़ ली, और दोनों को बहुत ही सरलता से पृथक पृथक कर दिया। फिर निकट के लोगों में भी साहस का संचार हो उठा और उन लोगों ने उन दोनों छुटे घोड़ों को एक दूसरे की आँखों से ओझल हटा दिया।

'यह युवक कौन था यह बतलाऊँ ?'

यह पहिले वाला ही कितनों वर्षों से हमारे हृदय-सिंहासन पर विराजने वाला वही किशोर था। परन्तु मन का वह किशोर युवक हो चुका था किन्तु किशोरावस्था वाली समस्त खूबियाँ उसमें इस समय भी पूर्ण रूप से प्रकाशित हो रही थीं ऐसा मुझे भान हुआ।

उसके देखते ही हमारे शरीर में कम्पन प्रारम्भ हो गया, और उससे हमारी आँखें चार होते ही सम्पूर्ण शरीर झनझनाहट से भर गई।

'मृणाल ! आपको पहिचानती हो क्या ?' मेरे भाई ने उसका परिचय देते हुये प्रश्न किया—

मैंने धीमे स्वरसे स्वीकृत दी—मैंने कहा,—'जब छोटी थी उस समय इनसे लाठी सीखती थी।'

भाई ने हँसते हुये लड़कपनकी बात सुनी। मैं तो पुरानी बातें कुछ भी न भूली थी किन्तु भाई ने समझा था कि वर्षों पश्चात् मिलने वाले बालक प्रायः एक दूसरे को भूल जाते हैं।

'आपको कोई चोट तो नहीं लगी ?' भाभीने उससे पूछा।

'जी नहीं मुझे कोई चोट नहीं लगी।' युवक बोला। उसके स्वर में मुझे बाँसुरी की ध्वनि स्पष्ट सुनाई दी।

भाभी और मैं घर के अन्दर गई। मेरी बहुत अधिक इच्छा थी कि मैं उस किशोर के साथ कुछ देर बात करूँ। परन्तु यह हो कैसे ! कुछ समय बाद साहस बटोर धड़कते हृदय से मैंने भाभी से पूछा।

'ये यहाँ कैसे ?'

'कौन ?'

'चन्द्रबदन।' किशोर का नाम चन्द्रबदन था। हृदय में मैं डर रही थी, इसलिए उसका नाम लेने में मुझे अधिक परिश्रम करना पड़ा।

'यह तो दो महीने से अपने यहाँ आफिस में काम कर रहा है। आज किसी कामके प्रसंग में तुम्हारे भाई ने बुलाया था।'

हमारी भाभी कितनी चतुर हैं यह तो तुम जानती ही हो। वह आफिस में होनेवाले कार्य्यों को भी जानती रहती हैं यह मैं नहीं जानती थी। भाई के ऑफिस में यह क्लर्क या सेक्रेटी के पद पर होगा दूसरा क्या हो सकता है। मैं तो इसके बारे में कितने स्वप्न देखा करती थी। मेरी कल्पनाओं में तो

वह मोटर में विचरता सिविलियन; दुःखी रोगियों के लिए ईश्वर समान चिकित्सक या न्याय आसन को शुसोभित कर न्यायाधीश, अथवा अधिकारी वर्ग को घबड़ा देने वाला देशभक्त होगा। मेरा मन संकोच से भर उठा परन्तु मैंने यह बात मुँह से निकाली नहीं।

रात्रि में हमारे विचारों में परिवर्तन हुआ। मैंने सोचा—

'वह बेचारा क्या करे। संयोग ही अगर ऐसा हो तो फिर छोटी भी नौकरी करना ही पड़ता है। मैं भी कैसी स्वार्थी हूँ? कोई हर्ज नहीं! थोड़े वेतन में भी मैं गृहस्थी चला लूँगी।

फिर तो मैं इसी प्रकार के थोड़े आय में किस प्रकार गृहस्थी की व्यवस्था करनी होगी इसीका जाग्रत में ही स्पप्न देखने लगी। मुझे बढ़िया साड़ियों की क्या आवश्यकता है? गाड़ी होने से तो दो-तीन मील तो हवाखोरी के लिए जाया जा सकता है। पर गाड़ी की ऐसी कौन सी जरूरत ही है....इत्यादि।

मैं अपनी छोटी सी गृहस्थी इस प्रकार से सजाऊँगी कि भाभी देख कर तारीफ करेंगी।

सम्पूर्ण रात्रि मैं इसी उधेड़बुन में पड़ी अपने भविष्य गढ़ती रही। दिन में भी यही विचार दिमाग में घूम रहे थे।

'मृणालवती बहिन, आज इतनी विचारग्रस्त क्यों हो?' भाभी ने पूछा, 'किसीका राज्य लेना है क्या?'

ठीक, हमारा मन तो अपना छोटा सा ही राजपाट लेना चाहता था। मैं हँस पड़ी, कुछ उत्तर नहीं दिया। भाभी ने फिर कहा—

'मुझसे तो तुम ठीक ठीक कहो? हँसी क्यों आ रही है?'

'एक दिन तुमने ही तो कहा था।' मैंने उत्तर दिया।

'आज कहो न, क्या है?'

उस दिन कहने में कोई अटक न थी। फिर मेरी जुबान न खुली। प्रेम की कहानी प्रथम बार क्या किसी से सरलता पूर्वक कही जा सकी है? उससे मिलने के लिये मैं एक पैर से खड़ी थी। क्या उपाय करूँ? किस प्रकार कहूँ? मैं विकल हो उठी। सायंकाल भाई भाभी के साथ हवा खाने जाने के लिये भी इन्कार कर दिया।

'आज तो मृणाल बहिन को किसी भूत ने भरमाया है।' जाते जाते मेरी भाभी ने कहा। भाभी का मेरे ऊपर कितना स्नेह है यह तो तुम जानती ही हो।

मुझे घर में अच्छा नहीं लगा, इसलिये मैं बगीचे में टहलने लगी। बगीचे के एक कोने में कुर्सी पड़ी थी वहीं जा कर मैं थोड़ी देर बैठी। अंधकार होने पर भी मैं वहाँ से उठी नहीं। एकाएक कुर्सीकी पीठ पर किसी ने हाथ रक्खा ऐसा मुझे लगा। मैंने सिर घुमा कर देखा तो चन्द्रवदन निकट खड़ा था। मेरे शरीर में बिजली चमक उठी। मुझसे कुछ बोला नहीं गया।

'मेरे मन में तो ऐसा था कि तुम मुझे भूली गई हो?' चन्द्रवदन ने कहा।

मैंने उसे कोई उत्तर नहीं दिया। मेरी कोई कल्पना साक्षात् रूप से अवतरित हुई ऐसा मुझे भान हुआ। उसी सुख का स्वाद लेती बैठी रही।

'मैं जा रहा हूँ, क्षमा कीजियेगा।' मेरी ओरसे कोई भी उत्तर न मिलने से चन्द्रवदन ने कुछ देर खड़े रहने के पश्चात कहा।

'अब नहीं जाने दूँगी। बैठो यहीं।' मेरा सुख लौट जायगा। इस भय ने मेरी जुबान खोल दी और मैंने उसका हाथ पकड़ कर अपने पास बैठा लिया।

बाल्यकाल की बातें हम लोगों में होने लगी। बातों में मैं अपने को भूल बैठी, मेरा हाथ चन्द्रबदन ने कब अपने हाथ में ले लिया इसका भी मुझे ज्ञान न हुआ। इस हाथ के साथ उसने खेलना भी आरम्भ कर दिया था। और कुछ क्षण बाद हमारे हाथ को उसने चूम लिया उस समय तो मुझे ऐसा लगा कि इस हाथ का वह हर समय इसी प्रकार चुम्बन किया करे तो कैसा!

मैं अकथ्य सुखका अनुभव कर रही थी। एकाएक मैंने पूछा, 'मैं भाभी से कहूँ ?'

'क्या ?' ्न्द्रबदन ने पूछा।

'अब मैं तुम्हें अपने हाथ से छूटने नहीं दूँगी। बहुत वर्षों तक छटक गये थे। मुझ से प्रत्येक दिन भाभी विवाह के लिये पूछा करती , अब मैं हाँ कह दूँगी।' मैंने कहा।

'परन्तु मैं तो विवाहित हूँ।' चन्द्रबदन ने कहा।

मेरे सिर पर बिजली गिरी। मैं चंद्रबदन के निकट से हट गई। मेरा सम्पूर्ण शरीर थरथरा उठा।

बहुत देर तक मैं क्रोध की ज्वाला से जलती रही। मैंने पूछा—

'मुझसे कहा क्यों नहीं ?'

'तुमने पूछा नहीं तो क्या कहूँ ? पर...पर...मैं तुम्हें बिल्कुल भूला नहीं हूँ, तुम्हें प्यार करता हूँ।'

'मुझे प्यार करते थे तो विवाह क्यों किया ?'

'मैं क्या जानता था कि तुम मेरा आसरा देख रही हो ?'

मेरा क्रोध भभक उठा मैं वहाँ से एक दम चली गई। चन्द्रबदनका मुख उस समय विकृत बन गया। उसका सौन्दर्य मुझे अरुचिकर सा दीख पड़ा। मैंने उसके मुख की ओर देखा

भी नहीं। किन्तु तब से अकेले चन्द्रबदन की ही ओर से नहीं समस्त पुरुष जाति की ओर से मुझे तिरस्कार हो गया।

मृणाल को थकावट लगी। उसके स्वाँस की गति तीव्र हो उठी, कुछ देर बाद डाक्टर निर्मला ने हँसकर पूछा—

'परन्तु तुमने उस बात से अपना शरीर इस प्रकार का क्यों कर डाला? मैं अब अपनी बात कहूँ? बहुत छोटी है।'

मृणालवती के मुख पर साधारण भाव की परछाईं दिखाई पड़ी। उसे देख निर्मला ने कहा—

'एक पुरुष के प्राणों की मैंने अपने व्यवसाय के अन्तर्गत रक्षा की। उसका प्राण बचाया इतना ही नहीं उसे अपना प्राण भी समर्पण कर दिया। जब तक उसे मेरे परिचर्य्या की आवश्यकता थी तब तक उसने मुझे स्वीकार किया और मेरे बिना वह संसार में जीवित नहीं रहेगा ऐसा मुझे उसने आश्वासन दे विश्वास दिलाया। वह स्वस्थ हुआ और मैंने अपने को उसके चरण में अर्पण कर दिया। उसने मुझे क्या उत्तर दिया? उसकी कल्पना कर सकती हो?'

मृणाल ने सिर हिलाया।

'तू थोड़ी काली है। थोड़ी गोरी होती तो कितना अच्छा होता?' उसने मेरा यह कह कर स्वागत किया। मैंने अपने को वहाँ से लौटा लाई; मुझे उस समय क्या हुआ होगा उसे तुम भली प्रकार समझ सकती हो। परन्तु मैं तो काली होकर भी मजबूत हूँ किन्तु पुरुषों की बेवफाई पर मरने के लिए प्रस्तुत नहीं हूँ। निर्मला ने कहा—

मृणाल कुछ बोली नहीं। सबेरा अधिक हो चुका था।

'अब उठना चाहिए?' निर्मला ने कहा।

'हाँ, चलो।'

मृणाल और निर्मला दोनों उठ खड़ी हुईं। चलते चलते मृणाल फिर हँसी।

'क्या! क्या! अब क्या है?' निर्मला बोली।

'कुछ नहीं। ये तो ओस की बूँदें हैं।'

'पुरुषों का प्रेम और ओस की बूँदें दोनों एक समान हैं। जरा छूते ही मिट जाती हैं और थोड़ी गर्मी से सूखज ाती हैं।'

'परन्तु डाक्टर, ये ओस की बूँदें कितनी सुन्दर दिखलायी पड़ती हैं।' मृणाल ने कहा।

उत्तरदायित्व

अकबर के नीति के अनुसार अभी भी बहुत से नवाबों की हिन्दू ललनाओं से विवाह कर अपने राज्य का विस्तार व नींव दृढ़ करने की लालसा जागृत थी। इसी भावना से प्रेरित हो अमीनाबाद के युवा नवाब अहमद खाँ की आँख भी पड़ोस के ठाकुर राजसिंह के राज्य और उनकी असामान्या रूपवती युवती कन्या पद्मा पर पड़ी। नवाब ने एक ही तीरसे दो शिकार करने का निश्चय किया। कन्या से विवाह के लिये इन्कार करने पर राजसिंह पर चढ़ाई कर राज्य को तहस नहस कर डालना।

राजसिंह एक छोटे जागीरदार थे, परन्तु उनके में क्षत्रित्व की कमी न थी। उन्होंने अपनी तलवार के बल से मुस्लिम प्रदेशों से ही थोड़ा थोड़ा जीत कर अपने इस छोटे से राज्य की स्थापना की थी। वह पूर्णतः पुराने ढङ्ग के क्षत्री भी न थे। छल बल व कौशल से निरन्तर वह राज्य के सीमा की वृद्धि करते जाते थे। इसी उद्देश्य से कभी कभी नवाब को भी आधीनता स्वीकार करने की झूठी आशा दिला देते थे, परन्तु अपना कार्य समाप्त होते ही कौशल पूर्वक वह बात वहीं तोड़ देते। अड़ोस-पड़ोस के राजपूतों का संगठन कर एक वृहद सेना एकत्रित कर नवाब पर चढ़ाई करने की पूर्ण योजना प्रस्तुत थी।

नवाब राजसिंह के कार्य्यों से हमेशा चिन्तित रहता था।

उसे उक्त योजना का भी कुछ कुछ भान हो गया था। उसे निश्चय था कि पहाड़ी प्रदेश में राजपूतों से युद्ध कर विजय नहीं प्राप्त की जा सकती। राजपूत लोग पहाड़ों पर बाजों के समान मुगलों पर झपट पड़ते, और जहाँ की तहाँ ढेर कर देते थे।

राजपूतों को बिना शान्त रक्खे नवाब सल्तनत में अमनो अमान कायम नहीं रख सकता था। उसे शान्त बने राजसिंह की शान्ति का अत्यन्त भयङ्कर परिणाम भी भोगना पड़ा था। वह राजसिंह के हिन्दूत्व के अभिमान को नीचा दिखलाने को हमेशा सचेष्ट रहता था। उसे निश्चय था कि मर मिटने के पहिले राजसिंह पद्मा का विवाह कभी भी नवाब से होना स्वीकार नहीं करेगा। चालाक नवाब ने सोचा इसी बहाने राजसिंह को हमेशा के लिये मिटा देना ही श्रेयस्कर है।

नवाब ने अपनी बड़ी सेना के साथ कूच किया, और जोरों की अफवाह यह उड़ाई की नजदीक के स्वतन्त्र मुस्लिम राष्ट्रों को वह अपने आधीन करना चाहता है। उसने राजसिंह व अन्य पड़ोस के राजपूतों से जो पूर्ण वा अर्धस्वतन्त्र थे युद्ध में सेना की सहायता माँगी। युद्ध क्षेत्र ही तो क्षत्रियों के लिये मनोरञ्जन स्थल होता है उन्होंने स्वीकृति दे दी।

वचनवद्ध राज्य सभासदों से इसी युद्ध के विषय में परामर्श कर ही रहे थे कि नवाब के विशेष दूत ने एकाएक सभा में प्रवेश कर नवाबका हुक्म सुनाया—'राजसिंह अपनी कन्या पद्मादेवी का विवाह एक हफ्ते के अंदर नवाब के साथ कर दें।' इस आज्ञा ने राजसिंह और सभासदों को आश्चर्य में डाल दिया। कल तक जो नवाब इन राजपूतों की ससैन्य सहायता चाहता था उसने आज एकाएक ऐसा संदेशा कैसे कहलाया, कहीं वह

पागल तो नहीं हो गया है ? साथ ही साथ उनका चारित्व भी जाग उठा, उन्हें मालूम हुआ कि यह हिन्दुत्व का अपमान हो रहा है।

सन्देश वाहक ने कहा, 'आपके कन्या को हिन्दूधर्म पालन करने की छूट होगी।' इस सन्देश ने अग्नि में घी का काम किया। राजपूत क्रोध से उन्मत्त हो उठे। उन्होंने दूत से कहा—'जाकर अपने नवाब से कह दे कि धड़ से अपने हाथों अपना सर काट कर थाल में रख हमारी नजर करे, फिर पद्मा के साथ विवाह क लिए मन में विचार लाये।'

दूत ने उत्तर के बदले में नवाब की शक्ति का भय दिखलाया तथा परिणाम भी समझाने की चेष्टा की, पर कोई भी राजपूत कुछ भी सुनने के लिये तैयार न था।

राजसिंह इस बात से पूर्ण विज्ञ थे कि नवाब से खुला युद्ध बहुत दिनों तक नहीं किया जा सकता, पर छापामार युद्ध से अधिक दिनों तक उसे परेशान किया जा सकता है और उन्हें इस बात की भी शंका थी कि हमारे दल में ही जयचन्द की कभी न होगी किसी न किसी के द्वारा पद्मा का हरण भी नवाब करा ले सकता है। कुछ ही दिनों पूर्व दो तीन साथी कुछ स्वार्थ की आशा से नवाब से जा मिले थे, उनका जाना राजसिंह को अपने दल में फूट की याद हमेशा दिलाये रहता था। फिर भी युद्ध में हमेशा मृत्यु से आलिङ्गन के लिये प्रस्तुत मन दूत के धमकी से विचलित न हुआ। नवाब की अपमानकारक माँग को ठुकरा सभा विसर्जित कर वह अन्तःपुर में पधारे।

रनिवास पूर्ण स्तब्ध था, वहाँ पहिले ही समाचार प्रचारित हो चुका था। महारानी ने राणा के उत्तर का अनुमोदन किया। सर्वस्व नष्ट कर भी पुत्री की रक्षा म्लेच्छ के हाथों से करना

ही निश्चित मत था।

एकाएक राजसिंह ने प्रश्न किया, 'परन्तु पद्मा कहाँ है ?'

❀ ❀ ❀ ❀

शिकारकी शौकीन पुरुष वेश धारी राजकुमारी पद्माको आज दिन भर प्रयत्न करने के बाद भी शिकार में कोई शेर या शूकर का दर्शन नहीं हुआ। वह परिश्रम से अति क्लान्त हो पहाड़ी पर एक स्वच्छ सरोवर के तीर पर सिर से सिर-त्राण उतार मुँह धोने का उपक्रम कर रही थी कि उसकी दृष्टि सामने से आते एक युवक राजकुमार पर पड़ी। राजकुमार से दृष्टि मिलते ही पद्मा को भान हुआ कि उसका हृदय अब उसका नहीं रहा।

विजयसिंह को राजकुमारी पद्मा ने दूर से अनेक बार देखा था, वह उसके पिताका बहुत ही विश्वासपात्र तथा विकट व भेद भरे कार्यों में सदा अग्रगणी रहने वाला सरदार था। राजसिंह व विजयसिंह दोनों के पिता अभिन्न मित्र थे। दो वर्ष पूर्व विजयसिंह के पिता की मृत्यु हो गई थी परन्तु पुत्र ने अपनी कार्य दक्षता और पराक्रम से पिता का अभाव एक दिन भी खलने न दिया। और कई कार्य ऐसे किये जिससे राजसिंह अपने को विजयसिंह का ऋणि समझने लगे थे।

पहाड़ी पर घोड़ा दौड़ाते विजयसिंह एक विशेष महत्व पूर्ण सन्देश ले कर राजसिंह के समक्ष जा रहे थे कि अचान उनकी दृष्टि वीर वेश धारी पद्मा पर पड़ी। जिसने उन्हें असमञ्जस में डाल दिया।

'वीर या व्यापारी ?' 'हिन्दू या मुसलमान......?'

पुरुष या स्त्री इन दोनों के जीवन में यह एक क्षण समान सा बन जाता है। एक सी ही मनोभावना में डूब जाते हैं। इसी क्षण को प्रेम का क्षण कहना चाहिये।

बिरले ही भाग्यवान पुरुष को घुँघराले बाल पवन द्वारा अठखेलियाँ करते तथा परिश्रम से मोती सदृश जलकण प्रशस्त ललाट पर शोभित, निर्जन अरावली के मनोहर सरोवर के तीर सुन्दर नारी के दर्शन का सौभाग्य मिला होगा। घोड़े से ही वह एकटक उस सुन्दरी के रूप-सुधा का पान करते हुए सोचने लगा कि इस निर्जन वनस्थली में यह साहसी सुन्दरी कौन हो सकती है ?

विजयसिंह ने पद्मा देवी के साहस, रूप व गुण की बहुत चर्चा सुनी थी, उसीसे वह उसका मिलान करने में विचार-मग्न हो रहा था। उन्हें सन्देश की महत्वता विस्मरण हो गयी। वह घोड़ा छोड़ तुरन्त सर-त्राण धारण करती पद्मा के निकट आ गये। पुरुष के छद्म वेष में पद्मा विजयसिंह को अत्यन्त मोहक लगी।

'आप कौन हैं ?' विजयसिंह ने प्रश्न किया।

विजयसिंह को देख पद्मा को शिकार की असफलता का विस्मरण हो गया था और वह सर-त्राण धारण कर चलने के लिये उद्यत सी दीख पड़ने लगी, तभी विजयसिंह ने पद्मा के निकट आ उपरोक्त प्रश्न किया।

'मैं हूँ पद्मा। ठाकुर राजसिंह की पुत्री।' पद्मा ने अपना संक्षिप्त परिचय दिया।

'आप मुझे पहचानती हैं ?' विजयसिंह ने पूछा।

'जी !'

'तो बतलाइये मैं कौन हूँ ?'

'आप ! आप ठाकुर विजयसिंह जी नहीं...?' विजयसिंह के नाम उच्चारण के साथ पद्मा ने कंठ में कम्पन का अनुभव किया। क्षण भर दोनों शान्त रहे।

'तो क्या शिकार नहीं मिला ?'

'नहीं ।'

'राजकुमारी जी ! आपके समक्ष हमारा एक उलाहना है ।'

'हमारे समक्ष क्या ?'

'आपने वन को सिंह विहीन बना दिया है ।'

पद्मा हँस कर बोली—आपको दूसरों की प्रशंसा करने का अच्छा अभ्यास है ।' थोड़ी देर चुप रहने के पश्चात् राजकुमारी ने पूछा, 'आप कहाँ जा रहे हैं ?'

'आपके साथ ही चल रहा हूँ ।' विजय ने उत्तर दिया ।

'क्यों.........?' पद्मा ने पूछा ।

'राणा से आवश्यक सन्देश कहना है ।'

'क्या सन्देशा है ?'

'सन्देश गुप्त है ।'

'पिता जी मुझसे कोई बात नहीं छिपाते ।'

'सम्भव है यह संदेश छिपा लें ।'

'क्यों ?'

विजयसिंह इस प्रश्न से सहज ही विचार में पड़ गये, राजकुमारी से गुप्त सन्देश कहना उचित है अथवा नहीं इसी के विवेचन में तल्लीन थे कि पद्मा की बेधक दृष्टि ने उनके मुँह से कहलवा ही दिया ।

'सन्देश आपसे ही सम्बन्ध रखता है ।'

'तो आप ही जो आपके मन में हो पिता जी से कहियेगा ।'

'परन्तु मैं आपके साथ ही चल रहा हूँ ।' विजय ने कहा ।

'मैं किसी अनजान पुरुष के साथ साथ नहीं जाती ।' पद्मा ने मुख घुमाकर उत्तर दिया और चलने के लिये कदम बढ़ाया ।

पद्मा का उपरोक्त उत्तर सुन विजय का मन क्षोभ से भर उठा। अन्य राजकुमारों के समान तो वह कभी भी स्त्रियों के संसर्ग में रहा नहीं। जहाँ कहीं भी स्त्रियाँ एकत्रित हो स्वतन्त्र रूप से मनोरञ्जन या रासरङ्ग इत्यादि करतीं; उन्हें वह तिरस्कार युक्त दृष्टि से देखता था। उसका जल सदृश्य स्वच्छ हृदय—शुद्ध प्रेम से परिपूर्ण, पहाड़ की चोटी सदृश उच्च और दृढ़ एकाग्र प्रेम की खोज में आजतक अविवाहित जीवन व्यतीत कर रहा था। उसकी जरा भी इच्छा पर अनेक उच्च कुल की ललनायें पत्नी या उपपत्नी के रूप में मिल सकती थीं।

उसने रूंधे कण्ठ से कहा—'राजकुमारीजी, एक क्षण रुकिये, आपके पिता हमारे शुभ-चिन्तक तथा पूजनीय हैं। उनके और हमारे परस्पर से आप अच्छी तरह अवगत हैं इसी कारण क्या आप मुझे अनजान गिन रही हैं?'

पद्मा ने पीछे घूम कर पर दूर से ही उत्तर दिया—'आपने मुझे अनजान गिना, फिर हमारा क्या दोष?'

'ऐसा नहीं है राजकुमारी! सन्देश सम्भव है आपकी सहन शक्ति के बाहर हो, इसी डर से मैंने नहीं कहा।'

'मुझे कोई भय नहीं......। मुझ में हर प्रकार के दुःख सहने की शक्ति है।'

विजय उक्त वार्ता सुन थोड़ी देर शान्त रहा वह सोचने लगा कि यह सर्व गुण सम्पन्न राजकुमारी राजनीति में भी विज्ञ है। उसके मन में एक विचित्र कल्पना ने जन्म लिया। अगर पद्मा कदाचित पत्नी रूप में प्राप्त हो तो गृहस्थ-जीवन तो आनन्दमय हो ही इसके सिवा राज्य संचालन और रणक्षेत्र में योगमाया सदृश होगी।

'आपके विवाह का सन्देशा है।' विजय ने अटक अटक कर कहा।

'हमारा विवाह! पर क्षत्राणी का तो स्वयंबर होता है।'

'परन्तु आपका तो स्वयम्बर नहीं होगा।'

'क्यों?'

'नवाब अहमद खाँ ने आपके साथ विवाह के लिये सन्देश भेजा है।'

'वह भले ही सन्देश भेजा करे, परन्तु विवाह करना न करना तो हमारी इच्छा पर निर्भर है।'

'परन्तु सम्भव है कि आपके राजमहल में पहुँचने के पहिले ही यह प्रश्न निर्णय हो लेगा।'

'पर आप कौन सा सन्देशा लेकर पिताजी के पास जा रहे थे?'

'मैं यह कहने जा रहा था कि नवाब ने जो विवाह के लिये सात दिन का समय दिया है वह झूठ है। कल प्रभात के पूर्व ही गढ़ यवन सेना से घिर जायगा।'

'ऐसा?'

'हाँ, सात दिन के बाद तो तुम्हें नवाब के साथ अवश्य ही विवाह करना होगा।'

पद्मा इस सन्देशे से व्याकुल हो उठी। सरत्राण खुल पड़े और उसके नागिन सदृश बालों की वेणी वायु के साथ अठखेलियाँ करने लगीं।

'पिताजी की मित्र के नाते आप क्या सहायता करेंगे?' पद्मा ने जोशीले स्वर में पूछा।

'जो वह आज्ञा देंगे वही।' विजय ने उत्तर दिया।

'आप आज्ञा की बाट तकेंगे ? आपका धर्म क्या आज्ञा देता है ?'

'सत्य की रक्षा में प्राणों का बलिदान।'

सन्ध्याकाल के रक्त वर्ण सूर्य्य की सुनहली किरणों ने सरोवर के जल के कण कण को स्वर्णिम बना दिया। परन्तु उसके पीछे अन्धकारमय रात्रि का अविर्भाव हुआ करता है।

'विजय ! मैं जो माँगूगी दोगे ?' पद्मा ने पृथ्वी को पैर के अँगूठे से कुरेदते हुए प्रश्न किया।

विजय को प्रश्न ने विचार में डूबो दिया। संकट में पड़ी दूर खड़ी हुई पद्मा क्या माँगना चाहती है। स्त्रियों के सम्पर्क से दूर रहने वाले विजय के लिये यह जटिल समस्या थी. वह भय और आनन्द के मिश्रण झोकों में हिलोलित होता हुआ स्वप्न निमग्न हो गया।

'आप क्या चाहती हैं ?' कुछ समय बाद विजय ने पूछा।

'इस प्रकार पहिले निश्चय कर कुछ देना है तो मैं नहीं माँगती, याद होना आवश्यक है कि भिक्षुक को दात्री सर्वस्व अर्पण के लिये भी सदा प्रस्तुत रहता है।'

'मैं वचन देता हूँ, आपकी हरएक माँग स्वीकार होगी।'

'अपना खड्ग मुझे दीजिये।' पद्मा ने भिक्षा माँगा।

पद्मा की माँग से विजयसिंह स्तम्भित हो उठा। क्षण भर पहिले जिस जगत में वह विचरण कर रहा था एकाएक वह नष्ट हो गया। वह सोच रहा था कि कदाचित पद्मा उससे अपना प्रेम व्यक्त करेगी अथवा राजमहल तक सुरक्षित पहुँचाने के लिये अनुरोध वा नवाब से रक्षार्थ प्रार्थना। परन्तु इन बातों के सिवा सिर्फ तलवार की माँग उसे एक दम विचित्र सी लगी।

विजय ने आश्चर्य्य भरे स्वर में पूछा—खड्ग ?

'हाँ !' पद्मा ने दृढ़ता से कहा।

'क्या कीजीयेगा ?' विजय ने पूछा।

पद्मा ने मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

'नहीं नहीं.....नाराज न हों! लीजिये हम आपको अपना प्रिय खड्ग अर्पण करते हैं।'

विजय ने अत्यन्त आदर पूर्वक खड्ग को मस्तक लगा फिर चूम कर पद्मा के सामने दोनों हाथों से बढ़ा दिया। खड्ग का पद्मा के हाथों से स्पर्श होते ही दोनों के शरीर में एक बिजली की लहर दौड़ उठी।

'खड्ग का दान कर मन में दुःख मत कीजियेगा।' पद्मा ने कहा।

'यह मेरा एक अङ्ग बन गया था।' विजय ने उत्तर दिया।

'आप अपना खोया हुआ अङ्ग पूरा कर लीजिये। यह मेरा खड्ग लीजिये।' यह कह पद्मा ने अपना खड्ग विजयसिंह के हाथों में दे दिया। विजय ने बिना कुछ कहे पद्मा के खड्ग को स्वीकार कर लिया। परन्तु अभी तक यह उसके समझ में न आया कि इस प्रकार के अदान प्रदान का क्या रहस्य है।

'विजय! अब आगे क्या होगा। तुम्हारा सन्देश तो मैं पिताजी से कह दूँगी, परन्तु.....'

'परन्तु मैं अब आगे क्या करूँ यह तो बतलाइये।' विजय ने पूछा।

'मैं तो नवाब के साथ विवाह नहीं करूँगी और तुम्हारा कहना है कि नवाब द्वारा हम घिर गये हैं। अब इस विपत्ति से हमारी रक्षा करो।'

'पद्मा तुम हमारे साथ चली चलो।'

'आज रात्रि उपरान्त तुम जब भी आओगे मैं तुम्हारे साथ चलने को प्रस्तुत हूँ परन्तु किसी भी हालत में अभी नहीं।'

दोनों एक दूसरे की ओर परस्पर देख रहे थे। दोनों की मानसिक निकटता बराबर बढ़ती जा रही थी। जिस कारण अपनत्व बढ़ने से आप और तुम का झगड़ा धीरे धीरे कम होने लगा था। उपस्थित संकट से उबरने के परामर्श में समय का ज्ञान न हो सका, अकस्मात रात्रि का आभास दोनों को हुआ, परन्तु अन्धकार हिलता चलता सा दिखलाई दे रहा था।

विजय ने कहा। 'पद्मा जल्दी करो, नवाब की सेना धावा करती गढ़ की ओर तेजी से बढ़ रही है।'

पद्मा झपट कर अश्वारूढ़ हो गई और सरपट चाल से गढ़ की ओर भागी। विजय थोड़ी देर तक उसी प्रकार खड़ा देखता रहा, ज्योंही घूमकर वह अपने अश्व के निकट पहुँचा कि पद्मा की आवाज सुनाई दी। 'विजय!'

'क्या?' दौड़ कर विजय ने पद्मा के पास पहुँच कर पूछा।

पद्मा एकटक निर्निमेश नेत्रों से विजय के मुख को निहारने लगी।

विजय विचार मग्न हो उठा, उसने पूछा—

'पद्मा! क्या कह रही थी?'

'कुछ नहीं।' पद्मा ने उत्तर दिया।

'मुझे क्यों पुकारा?' विजय ने दूसरा प्रश्न किया।

'आँख भर देख लेने के लिये।' कह पद्मा ने घोड़े को ऐड़ लगाई और क्षण भर में खड़े विजय के आँखों की ओट हो पहाड़ी के शिखरों में खो गई।

❀ ❀ ❀ ❀

सायंकाल रोशनी जलते-जलते पद्मा के साथ छूटे अन्य शिकारी गढ़ में प्रवेश कर चुके थे। पद्मा ने आते ही सिंहद्वार को बन्द करवा दिया और चिन्ता-ग्रस्त पिता के सम्मुख जा विजयसिंह के सन्देशे को कहा। थोड़ी ही देर बाद समाचार मिला कि यवनों की वृहद सेना ने घेरा डाल दिया है।

डंकों पर चोटें पड़ी, रणतूर चिंघाड़ उठे। तमाम सैनिक शस्त्रों से सुसज्जित हो गढ़ के मैदान में एकत्रित होने लगे। सम्पूर्ण दुर्ग के अन्दर जागृति हो उठी। सभी बालक, वृद्ध, युवा अपने अपने शक्ति अनुसार नवाब से लोहा लेने को उद्यत दिखलाई देता था। राजसिंह दूरदर्शी थे। उन्होंने नवाब के उस सपने को सफल होने ही नहीं दिया। जिस योजना में नवाब ने रात्रि के अन्दर ही किले पर कब्जा और पद्मा से विवाह का निश्चय समझ लिया था। नवाब को मार्ग में ही अटकाने की व्यवस्था पहिले से हो राजसिंह ने कर दी थी। परन्तु नवाब की वृहद और मँजी सेना के आगे एक हफ्ते टिकना राजसिंह ऐसे छोटे जागीरदार के लिये सम्भव न था। दूसरी बात यह कि निरन्तर युद्ध से सेना और सेनापति तथा स्वयं राजसिंह भी थके से थे। तीसरी बात ठाकुर राजसिंह की कन्या पद्मा के साथ नवाब की विवाह की आकांक्षा। यह राजसिंह का निजी पारिवारिक प्रश्न था। बहुतेरे राजपूतों ने अपनी अपनी कन्याओं और बहिनों का विवाह नवाबों से कर अपने अपने राज्यों में शान्ति स्थापना कर ली थी। अनेकों राजपूतों के विचार में नवाब ऐसे बड़े और बहादुर राजनीतिज्ञ बादशाह को अपनी कन्या के विवाह में अपकीर्ति का कोई कारण न था। उक्त विचार के अनेक सेनापति भी राजसिंह की सेना में थे।

नवाब ने राजसिंह को पराजित करने के लिये केवल शस्त्र

और सैन्य की ही तैयारी की थी ऐसा न था। बल्कि अनेक गुप्तचरों को छद्म वेश में पहिले से ही राजसिंह के नगर में तैनात कर दिया था जिन्होंने लापरवाह और अभिमानी राजपूतों की आदत से लाभ उठाया और नगर के एक दिशा के रक्षकों को अपनी ओर मिलाकर द्वार खुलवा दिया। नवाबकी असंख्य सेना टिड्डीदल की भाँति नगर में जहाँ तहाँ लूट पाट करने लगी और प्रतिरोध करने वाले राजपूतों को यमलोक भेजती गढ़ के मुख्य द्वार तक पहुँच गई।

गढ़ अत्यन्त मजबूत था। राजसिंह ने गढ़ के रक्षार्थ थोड़े से चुनिन्दे साथियों को छोड़ बाकी सभी को नगर की रक्षा के लिये गढ़ के बाहर भेज दिया था और उन्होंने यह भी आशा न की थी कि प्रभात के पूर्व रात्रि में ही गढ़ पर धावा होगा। सेनापतियों, सेना और राजपूतों से इस प्रकार धोखा की कभी भी सम्भावना उनके मनमें न आई थी। सरलता पूर्वक सफलता से बराबर नवाब आगे बढ़ता ही आ रहा था, मार्ग में अनेक स्थानों पर विवेक से कार्य करता वह राजभवन तक प्रवेश कर गया। राजसिंह के प्रधान ने मानपूर्वक नवाब साहब का अभिवादन कर अन्दर पधारने के लिये प्रार्थना की।

'हमारे महाराज आपकी प्रतीक्षा में हैं।' प्रधान ने नवाब साहब से निवेदन किया।

'हमारी प्रतीक्षा में?' नवाब ने इस प्रकार के निवेदन से आश्चर्यचकित हो पूछा।

'जी! राजकुमारी जी का विवाह हो रहा है आपका आशीर्वाद आवश्यक है।' मंत्री ने उत्तर दिया।

'राजकुमारी का विवाह?'

'जी! पद्मा कुमारी का।'

'पद्‌मा का, किसके साथ ?' नवाब ने क्रोधपूर्वक पूछा।

'सरदार विजयसिंह के साथ।'

'विजयसिंह ! विजयसिंह तो हमारे यहाँ कैद में है।'

'ठीक ! पर राजकुमारी जी का विवाह भी सरदार विजयसिंह के साथ हो रहा है यह भी सत्य है।'

झटके के साथ नवाब महल के चौक में आया। राजसिंह तथा अन्य उपस्थित लोगों ने उठकर अभ्यर्थना की। नवाब ने देखा कि अभ्यर्थना के बीच में भी क्षण भर के लिये विवाह की क्रिया में कोई रुकावट न हुई।

कन्या के दाहिनी बगल में एक खुली तलवार रक्खी थी, और इसी तलवार के साथ पद्‌मा कुमारी के विवाह की क्रिया सम्पन्न हो रही थी। नवाबको राजपूतों की चलन का ज्ञान था। उसे मालूम था कि पति के स्थान पर रक्खी तलवार के साथ विवाह जायज है।

नवाब गरज उठा—'यह विवाह निर्थक है।'

'क्षत्राणी का विवाह निरर्थक नहीं होता।' शान्त स्वर में राजसिंह ने उत्तर दिया।

'विजयसिंह हमारी कैद में है, प्रभात शूली दी जायेगी, तब तो यह विवाह निरर्थक हो जायेगा।'

'नवाब साहब मुझे आप अपना मित्र समझें।' राजसिंह ने विनीत स्वर में कहा।

'नवाब के हुक्म उदूली करने वाला नवाब का दोस्त नहीं शूली का दोस्त हो सकता है।'

पद्‌मा, राजसिंह, ब्राह्मण, प्रधान, रक्षकों तथा अनेक उपस्थित राजपूतों को कैद की आज्ञा दी। पद्‌मा के हाथ में आत्म-हत्या के लिये उठी कटार उसी प्रकार रह गई।

प्रातःकाल गढ़ के मैदान में दो शूली तथा राजसिंह और विजयसिंह की मौजूदगी का हुक्म सुना नवाब साहब ने विश्राम के लिये प्रस्थान किया। लोगों का मत था कि अगर पद्मा ने नवाब के साथ निकाह स्वीकार न किया तो निश्चय ही राजसिंह और विजयसिंह को शूली हो जायगी।

❀ ❀ ❀ ❀

गढ़ के मैदान में चमकती शूली को सूर्य्य की किरणें और और भी प्रकाशमान कर रही थीं। सुबह की सुखद समीर के साथ ही यह करुण संवाद चारों ओर व्याप्त हो चुका था कि पद्मा किसी भी शर्त पर या डर से नवाब से विवाह के लिये राजी न हुई और नवाब के रात्रि वाले हुक्म मुताबिक हुक्म-उदूली की सजा राजसिंह और विजयसिंह को फाँसी होगी।

नवाब साहब को एक सैनिक ने सलाम कर संवाद दिया—'खुदाबन्द शूली तैयार है।'

'ठीक! राजसिंह और विजयसिंह कहाँ हैं?'

'मैदान में शूली के नजदीक। अदब से सन्देश वाहक ने उत्तर दिया।

'अच्छा, राजकुमारी पद्मा देवी को ऊपर झरोखे में पहुँचवाओ हम और राजकुमारी दोनों एक साथ ही शूली देखेंगे।'

'जो आज्ञा!' कह सैनिक अभिवादनकर चला गया। उसने राजकुमारी को नवाब साहब की आज्ञानुसार झरोखे पर पहुँचा दिया जहाँ नवाब और पद्मा के लिये उचित आसन सजाये गये थे। पद्मा कुमारी अन्दर ही अन्दर विचार निमग्न थी परन्तु उनके बाहरी चेष्टा में कहीं से जरा भी फर्क न आया था। वह धीरे धीरे कदम बढ़ाती हुई झरोखे में जा अपने आसन पर बैठ गई।

उस जमाने के वातावरण में कुँआरी राजकन्या को किसी भी पर पुरुष के साथ चाहे वह उससे कितनी निकटता क्यों न हो विवाह हुये बिना जाना चाहे रक्षण हेतु ही हो, पिता, कुल, तथा अपनी प्रतिष्ठा के प्रतिकूल था। राजकुमारी ने विजयसिंह के संदेशे के साथ ही साथ अपना निश्चय भी पिता के सम्मुख कह दिया और विजयसिंह की खड्ग लाने का उद्देश्य भी कि आज रात्रि में वह उस खड्ग के साथ विवाहित हो जाने पर दूसरे दिन विजय के साथ रक्षार्थ गढ़ से प्रस्थान कर जायेगी। पद्मा के इस प्रकार चले जाने और विवाह का समाचार सुन नवाब लौट जायेगा। इन्हीं विचारों से वह विजयसिंह का खड्ग माँग लाई थी और उसी कार्यक्रम पर उसका विवाह भी हो रहा था।

परन्तु भाग्य की रेख मेंटने के लिये अवतार भी असमर्थ थे।

विजयसिंह और राजसिंह दोनों ने पद्मा को ऊपर झरोखे में बैठे देखा तो उनका हृदय अपनी विवशता पर ग्लानि और क्षोभ से भर उठा। उन्होंने अपनी आँखें दूसरी ओर फेर ली। विजयसिंह लज्जा में डूब गये, एक क्षत्री के लिये कितने लज्जा की बात है कि वचन देकर भी वह एक अबला की रक्षा न कर सका। पद्मा के रक्षार्थ ही वह उस पहाड़ी सरोवर पर जहाँ दोनों मिले थे नवाब के एक सैनिक टुकड़ी से युद्ध में परास्त हो बन्दी हुआ था। युद्ध में अधिक यवनों के होते हुए भी उसने अकेले ही इस कुशलता से युद्ध किया कि इतना समय तो अवश्य ही बीत जाय की पद्मा सकुशल गढ़ में पहुँच जाय। परन्तु पद्मा को क्या यह बातें मालूम होगी। उसे अपना जीवन मारे लज्जा के दूभर हो उठा। वह चाहता था कि जितनी जल्दी

से जल्दी उसे शूली मिल जाय अच्छा है। परन्तु इस दुःख के साथ ही मन उसे एक सन्तोष भी दे रहा था कि वह आज भी पद्मा के रक्षार्थ प्राण विसर्जन कर रहा है।

विजय और राजसिंह के लिये पद्मा के पास एक ही उपाय शेष रह गया था, विजय के साथ विवाहअमान्य कर नवाब की अङ्कशायनी होना। परन्तु यह अनहोनी बात भी कदाचित लड़ग के साथ विवाह होने से पहिले दोनों के जीवन रक्षण के लिये अपना बलिदान कर पद्मा स्वीकार भी कर लेती परन्तु विवाह पश्चात् तो सती नारियोंको ऐसा विचार भी कलंकित बनाता है।

दूसरे किसी भी उपाय से दोनों के जीवन बचने की आशा न थी। पद्मा का हृदय शोक से सन्तप्त हो उठा, झरोखे के नीचे कूदकर प्राण देनेके लिये अकुला उठी। उसने एक बार शूली फिर पिता और पति तथा आखीर में पीछे निकट बैठे नवाबको ओर देखा। उसकी समझ में आ गया कि नवाब पूर्ण सतर्क है उसके रहते यहाँ से कूद कर प्राण देना असम्भव है।

'पद्मा कुमारी...' नवाब की मधुर आवाज पद्माके कानों में गूँज उठी। पर पद्मा ने कोई उत्तर न दिया न उसकी ओर देखा ही।

नवाब ने कुछ समय बाद कहा—'तुम अच्छी तरह मैदान में देख कर मुझसे कहो।'

पद्मा एकाएक नवाब की ओर घूम कर खड़ी हो गई और भर्राये तथा कर्कश स्वर में बोली—'देख रही हूँ।'

'तो बतलाओ पहिले शूली किसे दी जाये।' नवाब ने पूछा।

'तुम मुसलमान बे रहम हो।' पद्मा ने कहा।

'किसलिये ?'

'एक स्त्री के लिये इतने मनुष्यों का प्राण घात...?'

'स्त्रियों के लिये हिंसा करने वाले हिंदुओं के नाम गिनाऊँ?' नवाब ने हँसते हँसते पूछा।

पद्मा सोच में पड़ गई, नवाब का कथन सत्य था। उससे उत्तर न बन पड़ा। नवाब ने धीरे से कहा—'अगर हमारे साथ निकाह स्वीकार हो तो हम दोनोंको छोड़ देनेके लिये तैयार हैं।'

'यह बात उन दोनों से पूछो कि तुम्हारी शर्त पर जीवनदान चाहते हैं?' पद्मा ने कहा।

'तुम्हारे ही सामने पूछूँगा। पर मैं क्या समझूँ की हमारी शर्त कम से कम तुम्हें तो स्वीकार है।'

'मैं उनका उत्तर सुन क्या करना है उसी समय निश्चय करूँगी।' इतना कहते पद्मा का अँगिया के अन्दर की छिपी कटार पर हाथ चला गया।

नवाब मुस्कुराया। पद्मा ने देखा कि इस मुस्कराहट में क्रूरता के स्थान पर वात्सल्य की छटा है, वह चमक उठी।

'चलो! पूछकर निश्चय कर लिया जाय।' नवाब ने कह अपना कदम आगे बढ़ाया।

पद्मा की इच्छा हुई कि कटार नवाब के सीने में चुभो दे। परन्तु कटार का कार्य्य तो नवाब का जीवन ले लेने से पूर्ण न होगा। दूसरे अगर इस कार्य्य में सफल न हुई और पिता तथा पति ने नवाब की शर्त स्वीकार कर ली तो दूसरी कटार मिलना सम्भव नहीं है। निश्चय किया कि कटार और जीवन दोनों साथ साथ रहें अथवा जायें।

नवाब ने देखा पद्मा सीढ़ी धीरे धीरे उतर रही है। उसने पूछा—

'पद्मा कुमारी पहिले किससे पूछूँ? राजसिंह अथवा विजयसिंह से?'

'दोनों से एक साथ ही।' पद्मा ने उत्तर दिया।

'मैं अपने रूबरू पुछवा कर अपने मौजूदगी का भार उन पर डालना नहीं चाहता। तुम जा कर निश्चय कर आओ। मैं तब तक यहीं बैठा हूँ।'

'मैदान में शूली के निकट जा कर पूछ आऊँ?'

'नहीं सामने का पर्दा हटा दो। राजसिंह और विजयसिंह दोनों कैदी इसके पीछे मौजूद हैं, मैंने उन्हें मैदान से बुलवा लिया है।

पद्मा ने पर्दा हटाते ही देखा कि विजयसिंह का वह विजयी खड्ग जिससे विधिपूर्वक गत रात्रि को विवाह संस्कार हुआ था यथा स्थान विधिपूर्वक रक्खा है। उसका हृदय काँप गया, जिस स्थान पर विवाह की वेदी है वहाँ ही क्या पिता और पति विवाह के उत्तरदायित्व से इन्कार करेंगे।

पद्मा के दो-चार पग बढ़ते ही अग्नि कुण्ड दहक उठा। नवाब ने पर्दे को हटा देने की आज्ञा दी और स्वयं अपने हाथों से पद्मा और विजयसिंह के हाथों को मिला दिया। वेदी में घी डाल कर अग्नि प्रज्वलित की गई, उच्च लपटों से अग्नि खिल खिला कर हँस उठी, ब्राह्मणों के मंत्रोच्चार से गढ़ का कोना कोना गूँज उठा नवाब की दोनों भुजाओं के नीचे पद्मा और विजयसिंह के विवाह का कृत्य सम्पूर्ण हुआ। नवाब ने कण्ठ से मोतियों की माला उतार पद्मा के गले में पहनाते हुए कहा—

'पद्मा कुमारी एक मुसलमान के स्पर्श से तुम अपवित्र तो न हो जाओगी?'

पद्मा के आँखों में आनन्द के आँसू उमड़ पड़े।

नवाब ने विजयसिंह के शौर्य्य और पद्मा के दृढ़ संकल्प की अच्छी तरह पूरी परीक्षा की और अपनी अनिच्छा को इच्छा में परिणित कर कहा 'ये कसौटी के खरे हैं अल्लाह इन्हें हमदाद दे।' दुःखमय वातावरण को क्षण में नवाब ने सुखमय बना दिया।

'नवाब साहब!' कृतज्ञता के आवेश में भरे हुए कण्ठ से आभार जताती हुई पद्मा ने कहा।

'पद्मा! तुम मुझे नवाब न कह कर आज से भाई कहा करो।'

नवाब की बात सुन सब विस्मित हो उठे। मंगल वाद्य बज उठे।

शहनाई ने भैरवी के स्वर की मोहक तान ली।

मान-भंग

मनुष्य को रूप का अभिमान हो, धन का अभिमान हो सत्ता का अभिमान हो—यहाँ तक तो यह मानुषी दोष समझ में आता है। परन्तु जब वह नीति का अभिमान करता है तब यह दोष मानुषी दोषों की मर्य्यादा को उलंघन कर जाता है। पामर मनुष्य एक ही जाति का अभिमान करे ऐसा नहीं है। परन्तु जब वह नीति का अभिमान करता है तब आवश्यक है कि उसे सचेत कर दिया जाय कि हजारों वर्षों तक तपश्चर्य्या करनेवाले ऋषि-मुनि भी विचलित हो चुके हैं।

मनोरमा बहुत ही सद्गुणी युवती थी। उसके माता पिता ने उसमें नीति-संस्कार बहुत दृढ़ कर दिया था। शिक्षित होते हुए भी वह आस्तिक और धर्मपरायणा थी। अंग्रेजी भाषा की शिक्षा से उसकी सादगी और सरलता में कोई परिवर्तन नहीं हुआ था।

"तन मन अर्पण पति पग, नैनन नीर पखारूँ।"

कन्याशाला में बाल्यकाल की गायी हुई यह एक छोटी पंक्ति ही उसका आदर्श थी।

किन्तु खोटे भाग्यवश उसको मिला हुआ "पति" उपरोक्त पंक्तिकी पूर्तिके उपयुक्त न था। रश्मिकान्त दिखावमें प्रभावशाली था। अच्छा शिक्षित और धनी का पुत्र होते हुए भी आचरण

"आवारों" जैसा था। "आवारा" शब्द बहु अर्थी है। अर्थवाची सभी शब्दों के गुणों का वह भण्डार था। खेल का बहुत ही शौकीन था। क्रीकेट या टेनीस खेलना प्रारम्भ करने पर वह सब कुछ भूल जाता था। किसी बन्धु वा मित्र के साथ किसी गायन के जलसे में जाता तो उसे यह विस्मरण हो जाता था कि इतनी अधिक रात्रि तक उसके घर वाले उसकी राह देखते होंगे। निमन्त्रण अथवा बिना निमन्त्रण ही लोगों के यहाँ उत्सवों में सम्मिलित होता और चंचल तथा शोख युवती को खोज उसके साथ इस बात की परवाह किये बिना कि लोग उसकी निन्दा करेंगे घूमता तथा असंयमित अनावश्यक बकवास करता रहता।

मनोरमा यह सब कुछ जानती थी। परन्तु उसके सिवा कोई दूसरा अच्छा तथा इतना शिक्षित धनी युवक जाति में न मिलने पर 'भविष्य में सुधर जायेंगे' माँ बाप की इस आशा के आधार पर उसने अपनी सम्मति दे दी थी, और रश्मिकान्त के साथ उसने विवाह संस्कार बिना किसी आपत्ति के हो जाने दिया था।

उसे अपने ऊपर इतना भरोसा और विश्वास था कि वह अपने नीतिबल से पति को सुधार लेगी।

दूसरों को सुधारने का कार्य्य सर्वव्यापी है। प्रत्येक मनुष्य इस मन्तव्य को ले कर ही जन्म लेता है। दूसरों में सुधरने का गुण न होने के कारण ही आज तक संसार के सुधार का कार्य्य रुका है। उसमें प्रत्येक सत्पत्नीमें तो पति की दुर्बलताओं को सुधारने की उत्कट इच्छा रहती ही है। इन इच्छाओं के परिणाम स्वरूप कितनी पत्नियों ने अपने पतियों को सुधारा इसकी संख्या मिलना तो मुश्किल है ही, तथापि उसका परिणाम कुछ

भी नहीं निकला यह मानने योग्य नहीं है।

मनोरमा ने विवाह के पश्चात् पति को सुधारने का भगीरथ-प्रयत्न किया। रश्मिकान्त सिगरेट पीता था। इस अनर्थकारी टेव को छुड़ाने का मनोरमा ने सतत प्रयत्न किया।

'आपको सिगरेट पीना क्या छोटे-लोगों सा नहीं लगता ? यह कितना गँवारूपन मालूम होता है।'

रश्मिकान्त सिगरेट मुँह में रक्खे हँसता हुआ कहता—

'हमारी सिगरेट गँवारू बीड़ी नहीं है बल्कि बड़े बड़े अमीर उमराव जो पीते हैं वह है।'

'सिगरेट चाहे जैसी हो, परन्तु मैं तो इसका पीना ही गँवारूपन समझती हूँ। देखने में कितना बुरा मालूम होता है ?'

'इङ्गलैण्ड में तो अब प्रत्येक स्त्री ने सिगरेट पीना प्रारम्भ कर दिया है। जो स्त्री सिगरेट नहीं पीती उसे कोई पसन्द नहीं करता। अगर यह गँवारूपन मालूम होता तो यह शिक्षित स्त्रियाँ इस टेव को पालतीं ? तुम स्वयं भी एक दिन इसका स्वाद ले कर देखो।'

रश्मिकान्त ने अपनी आदत छोड़ी नहीं, मनोरमा के दुःख का पार न रहा।

प्रायः वह रात्रि में भी विलम्ब से आता था।

'आप घर अकेला छोड़कर इतनी रात्रि तक कहाँ घूमा करते हैं ?' मनोरमा अर्धरात्रि तक जागरण कर पति के आने पर पूछती।

'खुली हवा में ! खुली हवा का सेवन बड़ा लाभदायक है।' उसे उत्तर मिलता।

'किन्तु इस रात्रि-जागरण से स्वास्थ्य गिर जायेगा तब ?'

'मुझे रात्रि-जागरण का अभ्यास हो गया है इससे स्वास्थ्य खराब नहीं होगा। अगर तुम्हें भय मालूम होता है तो अधिक जागना बन्द कर दूँगा।'

'इतनी रात्रि तक बाहर घूमा करते हैं, लोग क्या समझते होंगे ?'

'लोगों के ख्याल से क्या घूमना-फिरना छोड़ दिया जाय ? अधिक रात्रि होने पर तो अधिक लोग सो जाते हैं इसलिये मुझे कौन देख लेगा ?'

'यह क्या कोई सुधरने का लक्षण कहा जा सकता है ?' मनोरमा खीज उठी फिर भी उसने मधुर उपचार का ही प्रयोग किया—

'मुझे आपके बिना बिलकुल ही अच्छा नहीं लगता है।' प्रेम भरे शब्दों में मनोरमा अपना अभिप्राय प्रकट करती।

'तो मैं तुम्हें भी अपने साथ जहाँ जहाँ जाऊँगा ले जाऊँगा।' पति ने भी प्यार के उत्तर में अपना प्रेम जताते हुए कहा।

'इतना करने के बदले आप घर जल्दी आयें तो ?'

'यह तो बहुत उत्तम हो किन्तु जब मैं भ्रमणार्थ निकल जाता हूँ तब घर का स्मरण ही नहीं रहता।'

यह निराशा उत्पन्न करने वाला उत्तर सुनकर मनोरमा यह पूछना उचित न समझती कि कदाचित घर स्मरण न आये किन्तु क्या मुझे भी भूल जाते हैं ? यह बिना पूछे हुए प्रश्न का क्या उत्तर मिलेगा इसका निश्चय न होने से यह प्रश्न अव्यक्त ही रह जाता।

इस प्रकार के वातावरण में भी पति पर पूर्ण श्रद्धा रख सके यह पूर्ण सती के सिवा कौन कर सकता है ? मनोरमा सचमुच पूर्णादर्श रखती थी। परन्तु कलियुग का प्रभाव ही ऐसा है कि

इस प्रकार के वातावरण में क्रमशः आकर्षण समाप्त हो ही जाता है। उसने थोड़ा-थोड़ा कर पति से बोलना कम कर दिया हृदय ने विरक्ति धारण की। क्षोभ से मन भरा रहता, व्यवहार में उपेक्षा रहती, वार्ता के अलंकृत भाषा में व्यङ्ग और कटाक्षों का प्रयोग होता था। मनोरमा ने जानबूझ कर ऐसा व्यवहार किया हो, यह बात नहीं है परन्तु अनजाने में ही यहाँ तक परिणाम पहुँच चुका था।

इतना होने पर भी रश्मिकान्त पर कुछ प्रभाव पड़ा हो ऐसा नहीं मालूम होता था।

संसार के महापुरुष अपने जीवन पर पत्नियों द्वारा हुए प्रभाव को जनता में प्रसारित किये बिना नहीं रहते। कवि अपनी प्रियतमा को अनेक कविताओं के स्फुरण भेंट किये होता है। रण में जूझते हुए प्रतिद्वन्द्वी का मस्तक कृपाण द्वारा अलग करते समय पत्नी सुभट के नेत्रों के समक्ष साकार सी रमा करती है। राजनीतिज्ञ तो अपनी पत्नियों का आभार स्वीकार करते हुए थकते ही नहीं, और किसी चरित्रवान् पुरुष पर अपनी पत्नी का शुभ प्रभाव न पड़ा हो, ऐसा वे स्वीकार नहीं करते। सभी पत्नियों की महिमा अपार है।

जब तक पत्नियों के शुभ प्रभाव के नापने के यन्त्र का अन्वेषण नहीं हो जाता तब तक इस कथन की सत्यता में शंका ही कैसे की जा सकती है ?

नगर में एक परोपकारी, धनवान तथा चरित्रवान सज्जन पधारे थे। उनकी ख्याति सम्पूर्ण देश में फैली हुई थी। वह एक महान वक्ता भी थे। साथ में उनकी धर्मपत्नी भी थीं। उनका सम्मान करने के लिए नगर में एक बृहद सभा हुई। तालियों की गड़गड़ाहट के बीच उन्होंने अपने विचार प्रकट किये। 'प्राप्त

सम्मान के योग्य वह नहीं हैं। यदि कुछ विशेषतायें आप लोगों को दिखलायी भी दी हों तो उसमें मेरी श्रीमती जी का ही विशेष भाग है।' नेताजी की धर्मपत्नी ने अपने को वय के बन्धन से मुक्त जान लज्जा के आवरण से मुख को ढकने दिया। नगर की स्त्रियाँ अत्यधिक प्रभावित हो उठीं। स्वयं अपने पति में शुभ संस्कार के लिये कटिबद्ध हो गईं।

मनोरमाके क्लांत हृदयको प्रोत्साहन मिला। कुमार्ग पर नित्य अग्रसर होने वाले पति को यथा स्थान लाने के लिए उसने पुनः प्रयास प्रारम्भ किया। रश्मिकान्त और मनोरमा दोनों ही इस सभा में गये थे। रश्मिकान्त को धनवान होने के कारण सभी स्थान पर निमंत्रण मिलता। सभा से घर लौटने पर पत्नी ने सभा की चर्चा चलाई।

'अगर आप भी ऐसे ही होते तो मुझे कितना गर्व होता?' मनोरमा ने अपनी इच्छा प्रकट की।

'अरे, वह तो बहुत बड़े नेता कहे जाते हैं।' मनोरमा की रुचिके प्रतिकूल कोई उत्तेजक तरल वस्तु को पीते हुए रश्मिकान्त ने उत्तर दिया।

'आप भी ऐसे ही बन सकते हैं। पैसा है, रूप है, विद्या है। क्या नहीं है? सिर्फ आपकी ये आदतें छूट जायँ तो सब कुछ है?'

'परन्तु वह स्वयं अपने पुरुषार्थ द्वारा नेता बनने से इन्कार क्यों करते हैं? योग्य सम्मान तो उनकी पत्नी का है, यही उनका कहना है। अब समझाऊँ क्या?' सरलता की हँसी हँसते हुए रश्मिकान्त ने कहा।

'यह तो उनकी नम्रता प्रकट करती है।'

'मैं क्या जानूँ कि वह झूठ बोलते हैं? नम्रता में झूठ बोलना क्या पाप नहीं है?'

'ऐसे मनुष्य के लिये ऐसे शब्दों का प्रयोग ? आप तो समझते ही नहीं। कितना साधु पुरुष है ?' मनोरमा ने कहा। किसी के प्रति पूज्यभाव न होना यह मनुष्य का ओछापन है, ऐसी ध्वनि मनोरमा के कथन से निकलती थी। किन्तु क्या दलील करने से कहीं पूज्यभाव हुआ है ?

रश्मिकान्त की लापरवाही असाध्य थी। उसने अपनी आँखें सिकोड़ कर पूछा—'इन्हें तुम साधु कहती हो ?'

'निश्चय, क्यों नहीं ? सारा भारत इन्हें साधु की तरह मानता है।'

'इसे कितनी संतान हैं क्या तुम्हें मालूम है ?'

मनोरमा की दलील को दबाते हुए रश्मिकान्त ने प्रश्न किया। मनोरमा आश्चर्यचकित सी बन गई। विवाह-सम्बन्ध के परिणाम से साधुत्व की परीक्षा करने का रश्मिकान्त का प्रयत्न विवाह की पवित्रता को दूषित कर रहा था; विवाह से परे जैसा ही—बल्कि उससे भी अधिक अपवित्रता का अवकाश है ऐसी ध्वनि उसकी कल्पना से निकल रही थी। संसार का अधिक भाग इस सम्बन्ध को पवित्र मानकर उसके भुलावा में पड़ जाता है ऐसीध्वनि उसमें से निकल रही थी किन्तु उसका कुछ भी उत्तर न देकर तिरस्कार से कुछ भी बोले बिना मनोरमा अपने काम में लग गई।

मनोरमा को भी एक पुत्र था। विवाह-सम्बन्ध को दूषित करने वाले पति के लिए मान रखना असम्भव है। गर्विष्ठ एवं नीतिमान पत्नी के सम्मुख एक पर्दा आ खड़ा हुआ एवं पति-पत्नी के बीच अस्पृश्यता बढ़ गई।

रश्मिकान्त ने एक दिन कहा—

'मैं भ्रमण के लिये योरप जा रहा हूँ।'

एक तो रश्मिकान्त दूसरे योरप यात्रा। अब बाकी ही क्या रहा। योरप का स्वच्छंद वातावरण संसार-प्रसिद्ध है। वहाँ रश्मिकान्त जैसा स्वच्छन्दी, रूपवान धनिक मनुष्य निरंकुश तथा एकाकी विचरण करे तो अनीति के सीमा की पराकाष्ठा की कल्पना कर ही लेना चाहिये। परन्तु मनोरमा ने विरोध नहीं किया। विरोध करने जैसा सम्बन्ध भी अब उनमें नहीं रह गया था। ज्यों-ज्यों रश्मिकान्त आचार हीन होता गया त्यों त्यों मनोरमा ने दृढ़ता पूर्वक धर्माचार में अधिक से अधिक अग्रसर होने लगी। स्वाध्याय, देव-सेवा तथा बालक को पालना अब यही उसका संसार बन गया था। रश्मिकान्त सरीखा उसके जीवन का धूमकेतु भले ही कुछ समय के लिए अदृश्य हो जाय।

'ठीक है!' मनोरमा संक्षिप्त उत्तर दे अपनी देव-सेवा में लग गई।

रश्मिकान्त को यह व्यवहार नया लगा अथवा नहीं यह नहीं कहा जा सकता। परन्तु वह सहज ही कुछ समय के लिये विचार में पड़ गया और थोड़े दिन बाद योरप-भ्रमण के लिये चल दिया।

घर में मनोरमा और उसके बालक ये ही दो प्राणी रह गये। कुछ दिनों के लिये वह अपने पिता के यहाँ हो आई। परन्तु वहाँ उसे बहुत रुचा नहीं। फिर लौटकर वह अपने घर पर ही रहने लगी। नीति बल के समक्ष चित्तौड़ गढ़ जैसा दृढ़ दुर्ग भी धुयेंके अँबार सा ही दुर्बल जान पड़ता है। इस नीतिबल से पूर्ण पत्नी अकेली ही रहकर बालक का पालन-पोषण करने लगी। वह घबराये ही क्यों? पति ने सभी साधन परिपूर्ण कर रक्खे थे। गुमास्ता नौकर सब कुछ तो था।

विलायत से रश्मिकान्त का पत्र आया करता। परन्तु वह मनोरमा की क्रोधाग्नि को प्रज्वलित ही करने वाले रहते। किसी स्त्री-मित्र का उस पत्रमें वर्णन होता। मनोरमा उसे पढ़ती रश्मिकान्त का शरीर स्वस्थ्य और सुखी है इतना ही महत्त्व का भाग वह ध्यान में रखती और बाकी के सब भाग वह भूल जाती। वह भी पत्र लिखती। परन्तु उसमें अपना और अपने बच्चे का स्वास्थ्य अच्छा है, के सिवा दूसरा कुछ न लिखती। मनोरमा के पत्र को पढ़ने पर कोई यह नहीं कह सकता था कि यह पत्नी द्वारा पति को लिखा गया है।

इस प्रकार आठ मास बीत गये। एक दिन प्रातःकाल स्नान कर मनोरमा गीता का पाठ करने बैठी थी। नित्य एक अध्याय पढ़ने के बाद ही वह भोजन करती। अपने उत्कृष्ट धार्मिक बल द्वारा ही उसमें सुबुद्धि का विकास होने लगा। पीढ़े पर मृगचर्म बिछा उसपर आसन जमा, कपाल पर सहज ही भस्म का लेप करती हुई उसे अपने में किसी तपस्विनी अथवा अरुंधती या अहिल्याका भास होता था। आज पाठ करते समय एक तार उसे मिला। निष्काम कर्म का शिक्षण देने वाली गीता ने उसे फल की आशा न करना सिखाया था अतः मनोरमा ने उदासीनता से तार पढ़ा—

'मेरे बाल सखा ब्रह्मचारी बालकरामजी दिनाङ्क...को अपने घर पर पधारेंगे। अपने स्वभावानुसार तार देर से भेजा है जिसका विचार न कर उनके आवभगत का पूरा ध्यान रखना। पत्र भी भेज रहा हूँ।

रश्मिकान्त।'

ब्रह्मचारी जी का नाम समाचार पत्रों में पढ़ा हुआ उसे स्मरण हो आया। उन्होंने आर्य्यधर्म पर भाषण कर योरप के

बड़े बड़े विद्वानों को आकर्षित किया था। परन्तु ब्रह्मचारी जी से रश्मिकान्त की मित्रता के नाते इतनी अधिक घनिष्ठता कैसे हुई? उसे यही आश्चर्य था किन्तु उसका मन साथ-साथ कह उठा कि मित्रता में विपरीत आचरण निभ जा सकता है। उसे अपना ध्यान हो आया। उसके जैसी पवित्र आर्य्या का रश्मि जैसे पति का सहवास? ब्रह्मचारी बालकराम जी अपनी ख्याति के कारण वयस्क मालूम होते थे। इस आये हुए तार के अनुसार वह अधिक उम्र के उसे नहीं लगे।

यकायक उसके समक्ष मुनीम जी ने आकर कहा—

'मालकिन! एक साधु महाराज नीचे आये हुए हैं, और अपने ही यहाँ वह कुछ दिन टिकेंगे ऐसा कह रहे हैं।'

मनोरमा चौंक उठी। उसने तार फिर पढ़ा। तार में जो तारीख लिखी थी वह आज ही है इसका उसे निश्चय था फिर भी मुनीम से पूछ कर उसने निश्चय कर लिया। मुनीम से मनोरमा ने कहा—

'दीवानखाने में बैठाओ मैं पाठ कर के आ रही हूँ।'

कुछ समय पश्चात् मनोरमा दीवानखाने में आई। कुछ दूरी पर एक सादी कुर्सी पर स्वच्छ उजली धोती पहिने तथा एक चादर से शरीर ढके हुए एक साधु को बैठे हुए उसने देखा। साधु के काले गझिन घूँघराले केश कंधों पर लटक रहे थे। श्यामवर्ण की भरावदार दाढ़ी गोरे मुख की शोभा बढ़ा रही थी। आँखों पर चश्मा लगाये ध्यानपूर्वक पुस्तक पढ़ते हुए ब्रह्मचारी के निकट मनोरमा आयी। किन्तु वह पुस्तक में तल्लीन हुए बैठे ही रहे।

'श्री चरणों में मेरा नमस्कार स्वीकार हो।' मनोरमा ने नमस्कार करते हुए कहा। धार्मिक आचरणों से पूर्ण स्त्री पुरुषों

से बात करने में क्यों संकोच करे ?

पुस्तक पर से दृष्टि ऊँची उठाकर ब्रह्मचारी जी ने मनोरमा की ओर देखा। नमस्कार का उत्तर नमस्कार से देते हुए उन्होंने अपनी दृष्टि नीचे कर ली। मनोरमा को निश्चय हो गया कि ब्रह्मचारी जी अभी काफी छोटे हैं।

'मुझे तो अभी अभी तार मिला है कि आप आज ही पधार रहे हैं। एक दिन पहिले मिला होता तो मैं आपको कष्ट न होने देती। मैं स्टेशन पर आदमी भेजती।' मनोरमा ने तार निकट की मेज़ पर रखते हुए कहा।

'यही तो रश्मि की विशेषता है। तार उसने भेज दिया यही क्या कम है ? अन्यथा मुझे यहाँ से चले जाना पड़ता।' मित्र की उदारता से हँसकर ब्रह्मचारी जी बोले। इस संयमशील ब्रह्मचारी में मनोरमा की ओर देखने की लालसा तनिक भी दीख नहीं पड़ रही थी। उसके प्रति मनोरमा की सद्भावना बढ़ गई।

'नहीं महाराज, ऐसा कभी भी न होता। हमारे घर में साधुओं का सदा सत्कार होता है।' मनोरमा ने कहा। ब्रह्मचारी जी ने कोई उत्तर नहीं दिया।

मनोरमा ने चाय पीने का आग्रह किया। ब्रह्मचारी जी ने बतलाया कि उन्हें चाय का व्यसन नहीं है।

'विलायत में आप चाय नहीं पीते थे क्या ?'

'नहीं। मैं तो वहाँ भांग पी लोगों को चकित करता था।'

मनोरमा को ठीक लगा। चाय का व्यसनी साधू साधुत्व-साधन के लायक उसकी समझ में नहीं आता था। बालकराम के लिये ऊपर छतके एक ओर का कमरा ठहरने के लिये निश्चित किया गया और वहाँ उनके रहने की पूर्ण व्यवस्था कर दी गई। बालकराम को किसी भी वस्तु की आवश्यकता न थी। उनके

पास सरसामान भी कुछ अधिक न था। केवल एक मृगचर्म, दो धोतियाँ, दो चादरें और कुछ पुस्तकें थी।

कमरा सरसामान से पूर्ण था। परन्तु बालकराम तो छत वाले कमरे में खिड़की के निकट मृगचर्म बिछाये ध्यानस्थ बैठे होते या पुस्तक का अध्ययन करते होते। योरप में भ्रमण करने से सहज ही उपार्जित की हुई अपवित्रता की शंका को दूर करते हुए तपश्चर्या करना ही उनका निश्चय था। अपने बाल्य-काल के प्रिय नगर को पुनः से बहुत दिनों के पश्चात देखने पर वहाँ दो एक सप्ताह शान्ति पूर्वक बिताने का उन्होंने निश्चय किया था। इसके पश्चात उन्हें हिमालय को प्रस्थान करना था। संक्षेप में उत्तर देनेवाले बालकराम से मनोरमा ने इन बातों का पता लगा लिया था। उनका निकट सम्बन्धी कोई गाँव में नहीं बचा था। कॉलेज में ही विरागी मन होने से उन्होंने क्रियापूर्वक ब्रह्मचर्य्य की दीक्षा ले योगाभ्यास किया और मन को कछ शान्ति मिलने पर हिन्दूधर्म के रहस्य को पूर्ण रूप से समझने के लिए उन्होंने विलायत यात्रा की थी। हिन्दुस्तान को प्रस्थान करने ही वाले थे कि इतने में ही अपने बाल-स्नेही रश्मिकान्त से उनकी भेंट हो गई। जिनके आग्रह से उन्हें रश्मिकान्त के गृह में एक सप्ताह ठहरने का निश्चय करना पड़ा।

बालकराम का सितार में रुचि थी। रात्रि समय अगर अवकाश होता तो वह अपना सितार बजाता। रश्मिकान्त को भी सितार का शौक़ था। दोनों मित्रों ने एक ही शिक्षक के निकट संगीत सीखा था ऐसा साधुजी का कथन था। एकान्त को भी मृदु बना देनेवाली गतें मनोरमा के कर्णको बहुत ही प्रिय लगती थीं। किन्तु साधु पुरुष का संगीत में आकर्षण उसे रुचा नहीं। निर्लेप साधु को संगीत विद्या में ममत्व क्यों?

परन्तु बालकराम कभी कभी भांग भी पीता था। साधुओं को निर्व्यसनी होना चाहिये। मनोरमाको बालकरामके प्रति अधिक श्रद्धा हो गई थी। किन्तु यह सितार और भाँग का व्यसन उसकी श्रद्धा को विचलित करता, उसका मन कहता कि बालकराम के साधुत्व में इतनी कमी है।

एक दिन सायंकाल मनोरमा बालकराम के पास गई। वह एक दो घड़ी बालकराम के पास बैठती और हिन्दूधर्म का रहस्य तपश्चर्य्या, आचार, वर्तमान समयकी भ्रष्टता ऐसे ऐसे उपयोगी विषयों पर विचार-विनिमय कर शिक्षा ग्रहण करती। आज जब वह गई उस समय बालकराम एक छोटी सिल पर भाँग रगड़ रहे थे। मनोरमा उनके निकट जा बैठी। परन्तु उसके मुखपर तिरस्कार के भाव दिखलाई दिये। बहुत समय तक कितनी ही बातों के बाद भी उससे रहा नहीं गया; उसने पूछा—

'साधुओं को संगीत का ममत्व क्या शोभा देता है?'

'ममत्व मात्र से साधुओं को परे होना चाहिये।' बालकराम ने कहा।

'तब आप सितार के पीछे इस प्रकार पागल क्यों हैं?'

साधु थोड़ा हँसा और मनोरमा की ओर पूर्ण दृष्टि से देखा। वह शायद ही मनोरमा की आँखों से अपनी आँख मिलाता। उसने कहा—

'संगीत के नाद में ब्रह्म की उपासना है। यह एक प्रकार का योग-साधन है और इसमें कठिन तपश्चर्य्या की आवश्यकता है।

'यह तो कहने की बातें हैं। सचमुच में तो यह इन्द्रिय-सुख है।'

'योगेश्वर शिव ही तो इसके आचार्य्य हैं।'

'इसी लिये तो मोहिनी रूप द्वारा मोहित हुए।' वाद-विवाद में मनोरमा पराजित होना नहीं जानती थी।

बालकराम कुछ बोला नहीं। उसने भांग घोटना उसी प्रकार जारी रक्खा। थोड़ी देर बाद उन्होंने पानी, चीनी इत्यादि का मिश्रण कर भांग पीने लायक बना दिया।

'मैं जो यह भाँग पीता हूँ तुम्हें रुचिकर तो नहीं होती होगी ?'

'जी नहीं। मुझे तो यह प्रतिदिन ही कोंचती रहती है।'

'भाँग तो यह आर्यों का पेय है।' बालकराम के इन कथनों के स्वर में मनोरमा रश्मिकान्त की अनुत्तरदायित्व पूर्ण जैसी वाणी का सामञ्जस्य पाती।

'यह मिथ्या मान नहीं है ? व्यसन सभी अनार्य हैं, विदेशी हो या देशी।

'तुमने कभी भी भाँग पी है ?'

'मैं ? मैं कभी भी भाँग नहीं पीती।' दृढ़ता पूर्वक मनोरमा ने कहा। उसे जान पड़ा कि कुछ बातों में वह साधू से भी बढ़ी चढ़ी है।

'यह एक बड़ी भूल है। भाँग में कोई भी अवगुण नहीं है। सिर्फ उसे अच्छे ढङ्ग से बनाना चाहिये। मैं तो एक अथवा दो बार...?

'इतना भी किस लिये किया जाय ?'

'ध्यान और संयम में भी कितनी थकावट का अनुभव होता है। संसार में सम्पूर्ण साधुपन आने तक सात्विक विचार में लवलीन होनेके अभ्यास-रत होनेमें यह सहायता देती है और अपने में आपको भूला देती है। दृष्टान्त के लिये, सच्चिदानन्द का ध्यान करते हुए मैं जगत के कल्याण के विचार में विचरण

करने लगूँ। जगत् का कल्याण यह सच्चिदानन्द का धर्म है, किन्तु यहाँ सच्चिदानन्द में जगत कल्याण का भी कोई तत्त्व है। इसलिये सच्चिदानन्द को छोड़ सब विचार मन, बुद्धि, चित्त और अहंकार को सतेज रखते हैं। किन्तु आध्यात्मिक थकान मन-चतुष्टय को पकड़े रहता है। इससे एकधारा संयम में कमी आती है। इस कमी को हटाने के विचार से इस निर्दोष पेय का उपयोग आवश्यक है? यह मन को स्वच्छ बालक के समानआनन्दी बना देती है। आप अवश्य आज इसे चख कर अनुभव करें।

वेदान्तमें चाहे जिस प्रकार विचार किया जाय किन्तु सभी पर विद्वत्ता की छाप डालने की उसमें शक्ति रहती है? बालकराम के दिमागमें थकावट लगती हो, इस प्रकार ज्ञानियोंने नहीं समझा, ऐसा कहा नहीं है. ऐसी दलील सुन मनोरमा कुछ विचार-मग्न हो उठी। बालकराम ने अपना आग्रह चालू रक्खा और आखिर आग्रहके शक्तिके कारण रुचि न होने पर भी अपनेको अविवेकी न सिद्ध करने के लिए एक घूँट पीने की मनोरमा ने स्वीकृति दे दी। भाँग अधिक नहीं पड़ी है। नशा चढ़ना सम्भव नहीं इस प्रकार के कितने ही आश्वासन दिलाने पर ही इस आर्य्य पेयका अंश मात्र पीने का मनोरमा ने अपनी सम्मति दी।

एक बहुत छोटे गिलास में कृपण के प्रमाण सरीखा एक घूँट भाँग डाल बालकराम ने मनोरमाको दी। मनोरमाने उसे पीया। पीते ही उसका सम्पूर्ण शरीर प्रकँपित हो उठा अथवा झनझनी हुई यह उसे समझ नहीं पड़ा। बालकराम ने हँसते हुए कहा—

'कुछ भी शंका मत करो। इतने मजबूत मन का मनुष्य भी भ्रम में पड़ेगा तो मुश्किल हो जायगी। हमारी भाँग...' बालक राम को हँसता देख मनोरमा को भी सहज हँसी आ गई। बालक

राम को कहीं पहिले भी देखा तो नहीं है ? पहिले का परिचय तो नहीं है ? इस प्रकार मिथ्या-भ्रम भी उसे उठा। इस भ्रम के कारण से उसकी हास्यवृत्ति में वृद्धि हुई।

हास्य सरीखा चिपकनेवाला दूसरा रोग नहीं है। एकको हँसते हुए देखकर दूसरे को हँसी आने ही लगती है। एक बार उसके शिकंजे में आ जाने पर फिर उससे पीछा छुड़ाना मुश्किल हो जाता है। मनुष्य का विवेक, वैराग्य, विनय इत्यादि सब कुछ हास्य में प्रगट होता है। हँसी न रोक सकने के कारण उस स्थान से दूर हट जाने का प्रसङ्ग हर एक के जीवन में आया होगा।

तिसमें भाँग के हास्य प्रेरक गुणको बहुत लोग जानते ही हैं। मनोरमा को यह ज्ञात नहीं हुआ कि यह भाँग का ही गुण है, इसलिये उसका खाली हँसना नहीं रहा। ब्रह्मचारी बालकराम ने जो जो भी बातें कहीं उन सभी में मानों हास्य-रस भरा पड़ा हो ऐसा उसका प्रभाव मनोरमा पर हुआ। मजदूरों की हड़ताल सम्बन्धी बात हो अथवा जर्मन-युद्ध के निर्दयता की चर्चा किन्तु मनोरमा की प्रवृति सभी में से हास्य ढूंढ निकलती थी।

संध्या काल का अन्धकार बराबर बढ़ता जा रहा था, एक नौकर दीपक द्वारा प्रकाश करने आया। गम्भीर मनोरमा के मुख को आज इतना हास्य से परिपूर्ण देख वह आश्चर्यचकित हो उठा। उसने गम्भीरता पूर्वक एकाग्र दृष्टि से मनोरमा को देखा। नौकर का यह कार्य्य मनोरमा के मन में हास्य को बढ़ाने में योग देने वाला ही हुआ। चौंक कर नौकर तेजी के साथ नीचे चला गया और मनोरमा तथा ब्रह्मचारी के सम्बन्ध में अपने सहयोगियों में चर्चा कर उनके मनोनुकूल अनुमान को सत्य समझने में साधन उपस्थित करने लगा।

ब्रह्मचारी ने मनोरमा की आँखों में ललाई बढ़ती हुई देखा। उसकी हँसी ने अब उसकी बोली को भी अस्पष्ट बना दिया था। नशे से आँखें उनींदी हो चुकी थीं। पलकों पर सारे ब्रह्माण्ड का भार एकत्रित हो उठा हो ऐसा उसे लग रहा था। परन्तु इन सब में आनन्द की लहरें ही उमड़ी पड़ रही थीं। अत्यन्त हास्य से मन निर्बल होता हुआ उसे मालूम हुआ, इसी कारण पूर्वज विद्वानों ने विवेक द्वारा अति हास्य को निंद्य गिना है। मनोरमा मनोबल के प्रयोग में अशक्त हो ऐसी शिथिल थी। आदेशक के आदेश को पालन करने भर शक्ति उसमें बची थी। किन्तु इस परिस्थिति में भी आनन्द की वृत्ति का लोप नहीं हुआ था।

ब्रह्मचारी समझ गया कि भाँग ने मनोरमा पर पूर्ण अधिकार कर लिया है। मनोरमा के ओंठ सूखने लगे थे। ब्रह्मचरी ने अनुभव किया कि उसे तीव्र तृषा है। उसने मनोरमा के निकट पानी का गिलास रख दिया। परन्तु नशे के कारण मनोरमा को लगा कि पानी का गिलास उससे कोसों दूर है। उसने गिलास लेने का प्रयत्न किया। परन्तु प्रत्येक प्रयत्न निष्फल हुए और प्रत्येक निष्फलता का परिणाम हास्य की वृद्धि करने वाला हुआ।

अन्त में ब्रह्मचारी ने अपने हाथों में गिलास ले मनोरमा के तृषित ओंठों से लगा उसे पानी पिलाया। मनोरमा ने धीरे-धीरे गिलास खाली कर दिया। मनोरमा और ब्रह्मचारी के हाथों का स्पर्श हुआ। मनोरमा के शरीर में फिर झनझनाहट हुई। प्रत्येक स्फूर्ति को हृदय में प्रगट होने के लिए साधन होता है। नशा में मनकी चंचलता को रोकने वाले विवेक का अभाव हो जाता है। ब्रह्मचारी ने अपना हाथ हटाया नहीं और स्पर्श उसी प्रकार बनाये रक्खा। भाँग इस प्रकार की उत्तेजक तथा उन्मादक है

यह मनोरमा को कहाँ से ज्ञान होता ? नशा और स्पर्श दोनों के परस्पर सहयोग से मनोरमा का शरीर तो रोमांचित हो उठा था, उसमें उसे यह ज्ञान नहीं हो पाया कि वह अपना हाथ हटा ले। अनिर्वचनीय सुख उस समय पाप और पुण्य की विवेचना का विवेक नहीं रखता।

ब्रह्मचारी के मुख पर क्या भाव प्रकट हुआ इसे कौन कह सकता है ? मनोरमा को आभास था कि ब्रह्मचारी उसका हाथ पकड़े हुए हैं। परन्तु यह आभास अत्यन्त गहराई में केवल ज्ञानेन्द्रियका ही था। स्वप्न दिख रहा है यह जानते हुए भी नित्य निष्प्रयोजन स्वप्न देखा जाता है यह सभीका अनुभव है। उसी प्रकार जैसे कोई आकर्षक तथा नवीन स्वप्न वह प्रसन्नता से देख रही हो ऐसा उसे लगा। ज्ञानेन्द्रियका ज्ञान उसे बराबर टोक रहा था कि ब्रह्मचारी बालकराम उसका हाथ पकड़े हुए है, परन्तु मौज की तरङ्ग में आनेवाली वृत्ति इस विचित्र अनुभव को स्वप्न मान उसका विरोध करने से मनोरमा को रोक रही थी।

मनोरमा का स्वप्न आगे बढ़ा। उसकी आत्मा दूसरे दृश्य की साक्षी बनी।

'तुम बहुत ही सुन्दर हो मनोरमा।' ब्रह्मचारी ने बिना अपना हाथ हटाये हुए कहा। मनोरमा जैसी धार्मिक वृत्ति वाली स्त्री को उसके पति द्वारा इस प्रकार का प्रमाण-पत्र मिला होता तो भी उसे रुचता या नहीं इसमें शंका है। परन्तु इस स्वप्नावस्थामें उसे उपरोक्त वाक्य कोई अनुचित नहीं लगा। उसकी नशा में उन्मादी आँखों से हास्य ही प्रसारित हुआ। ब्रह्म-चारी ने दूसरा हाथ मनोरमा के पीठ की ओर से लाकर उसके कंधों पर रख दिया। हँसती हुई मनोरमा ने विलायत-विख्यात ब्रह्मचारी से कहा:—

'तुम्हें मैं बहुत अच्छी लगती हूँ तो मुझे क्या !'

जगत नियंता अपने मिलनेवाले श्राप को सुन जिस प्रकार हँसता है उसी प्रकार यह स्वप्नद्रष्टा मनोरमा खिलखिला कर हँसी।

अपने आलिङ्गन में खिलखिला कर हँसती हुई सुन्दरी को देख सतयुग के साधू क्या करते यह सतयुग के इतिहास में होगा। परन्तु इस कलियुगी ब्रह्मचारी बालकराम ने तो मनोरमा के अधरों से अपने अधर मिला विलम्ब तक चुम्बन किया।

स्वप्न में भय के प्रसङ्ग भी आया करते हैं। मनोरमा के अन्तरंग में भी भय का संचार हुआ। बाहुपाश द्वारा आलिङ्गित मनोरमा का फिर साधू ने चुम्बन कर व्यङ्ग भरे स्वर से कहा—

'नीति का बहुत ढोंग रचती थी गर्विता।'

इन शब्दों के सुनने के साथ ही मनोरमा का विवेक बल-पूर्वक मूर्तिमान हो समक्ष आ खड़ा हुआ। उसका रोमान्स भरा स्वप्न मिट गया। उसने अपने को सचमुच ब्रह्मचारी के अंग में जकड़े हुए पाया। उसे साधु पर पूर्ण तिरस्कार हो गया। बल लगा कर वह बालकराम के आलिङ्गन से मुक्त हो गई। बालक-राम ने भी उसे पृथक हो जाने दिया। उसने एक दम नीचे के खंड में जाने का निश्चय किया, परन्तु जाने के मार्ग को बालक-राम रोके हुए था। अत्यन्त आवेश में आकर उसने कहा—

'तुम कैसे मनुष्य हो। जाने दो मुझे।'

'हुँ..., मैं कैसा मनुष्य हूँ ? ब्रह्मचारी ने उत्तर दिया। मैं एक साधारण मनुष्य हूँ।'

'साधरण ?' आगे न बोल सकने के कारण मनोरमा का उद्‌गार उफन पड़ा।

'जैसी स्त्री वैसा पुरुष। दोनों ही पामर मानवी एक ही सरीखे दोष वाले हैं।'

'मुझे कुछ सुनना नहीं है। चले जाओ यहाँ से।'

'मुझसे यहाँ से जाया नहीं जा सकता। मैं तो तुम्हारी मुहब्बत में पड़ गया हूँ।'

'कुछ शरमाओ! साधू के वेश को तो न लजवाओ। तुम यहाँ से चले जाओ अन्यथा मैं चिल्लाऊँगी।'

'चिल्लाने की कोशिश करोगी तो मैं मुँह दबा दूँगा।'

'हमारे ही घर में हम पर ही अत्याचार?'

'इस नाशवान संसार में किसका घर किसका द्वार? यह सब भ्रम है। घर तो हमारा ही समझो न! सब समान ही है।'

क्रुद्ध हुई मनोरमा एक दम भागी। परन्तु साधु ने उसे फिर आलिङ्गन में जकड़ लिया। ज्योंहीं उसने चिल्लाने की चेष्टा की वैसे ही बालकराम ने उसकी वाणी को चुम्बन द्वारा बन्द कर दिया और निराधार तथा निरुपाय बनी हुई मनोरमा की आँसू से उमड़ती आँखों को देख बालकराम ने स्नेहभरी वाणी में हँसते हुए कहा—

'बेवकूफ, अभी भी नहीं समझी?'

इस स्वरमें उसकी परिचित ध्वनि थी, परन्तु मुख अभी तक परिचित न था। रुदन करते हुए मनोरमा ने पूछा—

'तुम कौन हो?'

'तुम रोओ नहीं तो मैं अपना परिचय दूँ।'

स्वर एक दम पहिचान पड़ गया। मनोरमा श्वास भरती हुई बोल उठी—

'कौन, रश्मि?'

'रश्मि न हो तो दूसरे के घर में कौन इतनी हिम्मत कर सकता है। बोलो ?'

सम्पूर्ण जिन्दगी पर्यन्त यत्न पूर्वक पालन किया हुआ नीति गर्व का आदर्श आचरण गल गया। लाखों रुपये की संचित की हुई धनराशि एक क्षण में नष्ट हो गयी, धनवान् दरिद्र बना हो ऐसी स्थिति मनोरमा ने अनुभव की। निःसन्देह उसको पराजित करनेवाला उसका पति है, इस प्रकार मन का विवेक मिट जाय ऐसे नशा के परिणाम स्वरूप कुछ समय के लिये उसके परवश हो जाने पर स्वाभाविक ही दुर्बलता जो आती है और अपना पतन होने पूर्व ही वह जागृत हो गई थी, किन्तु पाप तथा पापी का तिरस्कार करने वाला स्वप्न में भी पाप वासना का अनुभव करे यह उसके विशुद्धि के लिए भारी कलङ्क सदृश है। वह अपनी निराधार अवस्था का अनुभव कर हिचकी बाँध रो उठी, पाप के तीव्र पश्चात्ताप की वेदना का अनुभव कर वह खड़ी न रह सकी। उसके पैरों की शक्ति का ह्रास हो गया। वह बैठ गई। रश्मिकान्त ने उसे अत्यन्त प्रेमपूर्वक गोद में उठा अपने निकट आसन पर अपने शरीर का टेक लगा बैठाया और उसके पीठ पर हाथ फेरने लगा। वह अत्यधिक रोई। रश्मि ने उसे अपने मन भर रोने दिया। मनुष्य को रोते रोते भी थकावट हो जाती है। मनोरमा अपने स्थान से थोड़ा हिली ही थी कि इतने में ही रश्मिकान्त ने उसका बड़े प्रेमपूर्वक चुम्बन किया। इस चुम्बन के संयोग में वह समस्त संसार को भूल रश्मिमय बन गई। रश्मि के स्पर्श में उसे समाधि-सुख मिला।

इस समाधि में कितने क्षण बीते यह कौन कह सकता है ? परन्तु इन क्षणों में वे जीवन के युग-युग के साधों का सन्तोष पा रहे थे।

'अब तुम में मनुष्यता आ गई।' रश्मिकान्तकी गम्भीर वाणी सुन मनोरमाकी समाधि भङ्ग हुई। उसे यह वाक्य सत्य लगा।

परन्तु रश्मिकान्त का यह उद्‌गार और मनोरमा की यह निर्बलता-मानवता-सूचक प्रसंग का आखिर उल्लेख था। रश्मि ने फिर कभी इस बात का स्मरण भी नहीं किया। मानव जाति की निर्बलताओं के प्रति अब क्षमा करती हुई मनोरमा बड़ी कठिनता से जान सकी कि उसे ठगने के लिये ही रश्मि ने विलायत यात्रा कर स्वर तथा वेश परिवर्तन कला की कुशलता-पूर्वक शिक्षा ली है, और ब्रह्मचारी बालकराम के नाम से हिन्दू-धर्म के प्रचार का ढोंग रचकर प्रख्याति प्राप्त कर मनोरमा को चक्कर में डाल दिया है। ब्रह्मचारी के वेश में स्वयं पहुँचने के पूर्व कुछ ही पहिले मनोरमा को तार मिले इसकी भी व्यवस्था विशेषरूप से रश्मि ने किया था।

मनोरमा ने दूसरे दिन हँसते मुख से रश्मिकान्त के सामने सिगरेट का डिब्बा और उच्च कोटि के मद्य का प्याला रक्खा। रश्मिकान्त हँसा। उसने बड़े ही इत्मिनान से एक सिगरेट पी और मद्य के प्याले को खाली कर दिया। हँसते हुए वह मनोरमा के मुख के भावों का ध्यान पूर्वक निरीक्षण कर रहा था। मनो-रमा के मुख पर प्रसन्नता के भावके सिवा कोई भी दूसरा भाव प्रकट नहीं हुआ। ऐसे प्रसंगों पर मनोरमाके मुख परके तिरस्कृत भावोंको देखनेका उसका नित्यका ही अनुभव था। आज उसमें अनादरके भावोंका सर्वथा अभाव था। गम्भीर गति से रश्मि-कान्त उठा, सिगरेट का डिब्बा और दूर रक्खे मद्यके प्याले को उठा लिया और खिड़की के निकट जा अपने घरके पिछले भाग में डिब्बा और प्याला दोनों ही फेंक दिया।

मनोरमा आश्चर्यचकित हो उठी। रश्मिकान्त यथास्थान

लौटा और उसे अपने निकट बैठा कर बोला—

'सभी व्यसनों को तो मैंने यहाँ से विदेश जाने के समय ही छोड़ दिया था, केवल एक व्यसन बाकी बच गया है।

'वह कौन सा ?' मनोरमा ने पूछा।

'मनोरमा का।'

मनोरमा की कोमल अँगुलियों में अपनी अँगुलियों के जाल से मनोरंजन करते हुए रश्मि ने उसे बतलाया। मनोरमा को यह बात निजी अनुभव में सत्य दीख पड़ी। पूर्व का निकम्मा रश्मि अब मनोरमा के बिना एक क्षण भी नहीं काट सकता था।

❀ ❀ ❀ ❀

उस नौकर को अपनी भूल समझ में आ गई। मनोरमा किसी ब्रह्मचारी बालकराम के साथ नहीं हँस रही थी। वह तो अपने पतिके साथ हँस रही थी। इस प्रकार का विचित्रवेश धारण कर आये हुए मनके तरंगों में बहने वाले मौजी रश्मिकान्त को पहिचानने के बाद मनोरमा खिलखिला कर हँसे नहीं तो दूसरा क्या करे ? सभी नौकरोंको साधुके छद्म वेशमें ठगते हुये मालिक की ठगी को मालकिन ने पकड़ ली थी, इसी की चर्चा कर सभी हँसने लगे।

हम क्यों रुकें ...?

अनेक वर्षों से मधुकर सट्टा-बाजार में आता है। उसकी मान्यता है कि यह सम्पूर्ण जीवन भी एक सट्टा है। फिर व्यापार में क्यों सट्टा न हो? यह भी जीवन का एक विभाग ही तो है, एक क्षण में लाखों की सम्पत्ति मिल जाती और दूसरे ही क्षण मनुष्य सब कुछ खो कंगाल हो बैठता है। इसमें अजीब रोमांस है।

'परन्तु अपने तो व्यापार के ही सट्टे में पड़े रहेंगे कि कोई दूसरा भी सट्टा करेंगे?' मधुकर ने पूछा।

'हाँ, लगाओ बाजी! अबीसीनियाँ जीतेगा कि इटली? एक एक हजार से दस हजार तक हम लगाते हैं। स्वीकार हो तो बोलो?' मैंने उत्तर दिया।

मधुकर थोड़ा हँसा। उसकी हँसी मुझे कितनी ही बार अपमान से पूर्ण मालूम होती थी। जैसे वह हम सब लोगों से बड़ा आदमी हो, ऐसा उसकी हँसी में भाव होता था।

'क्यों हँस रहे हो? तुम्हारी हिम्मत कहाँ तक पड़ती है।'

'हिम्मत तो सब कुछ है। परन्तु तुम्हारे तरीके से नहीं। मधुकर ने कहा।'

'और दूसरे पाँच हजार के लिये भी हमारी बोली है। बोलो क्या कहते हो?'

अपने को तो इन मारवाड़ियों और गुजरातियों वाला सट्टा खेलने नहीं आता। इटली और अबीसीनियाँ लड़ रहा है। अपने लोगों को तो न बन्दूक पकड़ना है, न लड़ाई के मैदान में जाना है, न चोट खाना है। फिर यह पन्द्रह हजार रुपयों के लेन-देन का सौदा घर बैठकर करना चाहिये क्या ?'

'इससे क्या ? इसका ही तो नाम सट्टा है।' मैंने उत्तर दिया।

'नामर्दों का सट्टा।'

'तो तुम्हीं मर्दानगी वाला सट्टा बतलाओ ?'

'तैयार हो ? सुन कर भाग जाओगे।'

'कहो। मैं भागने वाला नहीं।'

'तुम इटली की सेना में जाओ, मैं अबीसीनियाँ की सेना में। फिर हिसाब लगाओ। इटली जीते तो मैं पन्द्रह हजार दूँगा, अबीसीनियाँ जीते तो तुम पन्द्रह हजार हमें देना।'

'क्यों गप मारते हो ? अपने लोगों को कोई सेनामें रक्खेगा भी ?' एक सटोरिया सेठ ने कहा।

'इसीलिये तो कहता हूँ कि अपना सट्टा नामर्दों का है।'

'मान लो कि वह हम लोगों को हब्शी-लस्कर में रक्खे, परन्तु यहाँ से सरकार क्या हम लोगों को जाने देगी।'

'यह दूसरी नामर्दी है।' मधुकर ने कहा।

'इसमें हम क्या करें ?' मैंने प्रश्न किया।

'उस बेलजियमोंको अबीसीनियाँ रख सकती है परन्तु हिन्द वासियों को हिन्द के बाहर जाने का क्या अधिकार है ?' मधुकर ने कहा।

'तो तुम सट्टाबाजार में क्या करने आये ? ऐसा था तो महात्मा गांधी के आश्रम में जा कर बैठना था।'

'मेरे मनमें यह था कि सटोरियों के सहवास से मैं अपने में साहस का संचार करूँ।' मधुकर ने कहा।

हम लोगों की बहस ने भीषण रूप धारण कर लिया था। चाय पीते ही पीते हम दोनों काफी गरम हो चुके थे। मधुकर को सट्टा बाजार से बाहर निकलवा देने की भी बहुतों की इच्छा हो गई थी। परन्तु ऐसे हँसमुख खुशदिल सटोरिये को बाजार से अलग कर देने से अपना कुछ भी लाभ न था। इसने जो हम लोगों के मनोरञ्जन करने का प्रबन्ध कर रक्खा था तथा उच्च प्रकार का शर्बत पिलाया करता था, इसका विचार कर मधुकर को बाजार से निकाल बाहर करना कृतघ्नता मालूम होती थी।

अन्त में एक नवीन आये हुए युवा ने मधुकर की शर्तों को स्वीकार कर लिया।

'ठीक! मैं तैयार हूँ। परन्तु अपने को इटली नहीं जँची।' युवक ने कहा।

'तो हम दोनों अबीसीनियाँ चलें, तुम उत्तर के मोर्चे पर जाओ। मैं दक्षिण मोरचा पर जाऊँगा। उत्तर के ओर की अबीसीनियाँ जीतेगी तो मैं पन्द्रह हजार तुम्हें दूँगा। दक्षिण ओर की जीतेगी तो तुम मुझे यह धन देना।' मधुकर ने कहा।

'परन्तु अबीसीनियाँ अगर न जीते तो?' मैंने प्रश्न किया।

'तो जीता न लौटूँगा। संसार भर की काली कहलाने वाली प्रजा को तैयार कर गोरों के स्वार्थ-गिद्धवृत्ति के समक्ष लोहा लूँगा।' मधुकर ने कहा।

'कब जा रहे हो?' एक सटोरिये ने आँख मारते हुए पूछा।

'इसी समय।' मधुकर के प्रतिद्वन्दी ने कहा।

मधुकर विचार में पड़ गया। क्षण भर विचार कर उसने कहा—'आज नहीं, तीन दिन पश्चात।'

'क्यों सेठ ! ठण्डे पड़ गये ?' किसी ने मधुकर की हँसी उड़ाई।

'कुछ कारण वश।' मधुकर ने कहा।

'हम लोग शर्त लगायें। मधुकर आज जायेगा अथवा तीन दिन बाद ? आज जाय तो मैं पाँच रुपया दूँगा।' किसीने कहा।

'मैं तीन दिन बाद जाऊँगा यह निश्चय है।' मधुकरने कहा।

'तब मैं इस शर्त से बाहर हूँ। आज और इसी घड़ी जाना हो तो मैं तैयार हूँ, फिर नहीं।' मधुकर के विपक्षी ने कहा :— 'कहने को कह दिया, किन्तु जबान पर कायम रहे यह बिरले ही का काम है।'

कुछ रूई के भाव में कमी-बेशी होने का समाचार मिलते ही वे सब लेने देने में पड़ गये और मधुकर की बातें भी भूल गये।

किन्तु दूसरे दिन मधुकर बाजार में नहीं आया इससे मुझे बड़ी चिन्ता हुई। सभी 'मधुकर आज क्यों नहीं आया' इसी चर्चा में लिप्त थे। मधुकर के प्रति मुझे विशेष स्नेह था। उसकी विचित्रता अनेक समय सभी को अनसुहाती सी लगती, उसकी टीकायें अनेकों को प्रज्वलित कर देती थीं, और उसके संस्कारिक मद सभी को कोचते थे किन्तु उस एकमें प्रकार की ऐसी सरलता भी थी कि उसके अन्य दोषों को भूल जाने का सभी का मन हो उठता था। मधुकर की उदारता भी अद्भुत थी। वह रासरङ्ग का भी शौकीन था और इसमें खूब मौज भी दिलाता था। खर्चे का उसका कुछ भी हिसाब न था। किन्तु ऊपर ही ऊपर छिपे-छिपे सभी ही इस रंग में रँगे हैं ऐसा ज्ञात होता है। इसकी आपस में ईर्षा होती और इसके साथ ही मधुकर के प्रति एक प्रकार का पक्षपात उद्भव होता था।

तीन वर्षों में हमारे और मधुकर में क्रमशः परिचय अधिक हो गया था। सट्टा खेलने वाले मौज भी खूब कर सकते हैं। पैसा हाथमें हो तब वह माथा मुड़ाकर मौज-शौकमें रुपया खर्च करते हैं। ऐसे प्रसङ्गों में मधुकर सावधान प्रतीत होता, रङ्ग राग में अलिप्त और पृथक तथा बड़े ऊँचे विचारका दिखलाई देता था। बीच बीच में कुछ बहाना कर मण्डली में वह गुप्त दान किया करता था जिससे वह और भी आकर्षक बन गया था।

फिर भी उसमें एक विशेषता थी। वह अनेक समय मुझे अपने घर के निकट ले गया होगा। परन्तु तीन वर्षों में कभी भी उसने मुझे नहीं बुलाया। घर के निकट आने पर ज्यों-त्यों बातें समाप्त कर मुझे लौटनेके लिए अनुमति दे देता था। उसके घर के बाहर अनेक सुसज्जित वस्तुएँ थीं। परन्तु उसके घर के द्वार को मैंने आज तक नहीं देखा था। यह परिस्थिति उसके गूढ़ आकर्षणों को बढ़ाती रहती थी। अन्त में उस दिन तो मैं उसके घर दौड़ गया और बन्द द्वार को खटखटाया।

'कौन है?' घर के अन्दर से उत्तर मिला। यह स्वर स्त्री का था।

'जरा दरवाजा खोलो न!' मैंने कहा।

'क्यों?' अन्दर से उस स्त्री ने पूछा।

'मधुकर से काम है।'

'वह तो नहीं हैं।' एक स्त्री ने द्वार खोलकर कहा। स्त्री रूप की भण्डार थी। मुझे आश्चर्य हुआ। यह कौन है? मधुकर की क्या लगती है? एक अनुमान हो सकता था सो मैंने भी किया। या तो पत्नी हो या......। अधिक विचार करने के पहिले ही उस स्त्री के निकट एक छोटी बालिका आ कर खड़ी हो गई। बालिका इस स्त्री की छोटी मूर्ति सी प्रतीत हुई।

'कब आयेंगे ?' मैंने पूछा।

'तीन दिनों में।' अधिक बात करने की इच्छा उस स्त्री की न जान पड़ी।

'कहाँ गये हैं ?'

स्त्री ने गाँव का नाम तो लिया परन्तु जैसे कुछ भूल हो गई हो ऐसा भाव उसके मुख पर भासित हो उठा और तुरन्त उसने द्वार भी बन्द कर लिया।

मैं थोड़ा शरमा गया। किन्तु मधुकर के जीवन के रहस्य के शोधको ललचा उठा। युवतीसे कुछ ज्ञात हो सके यह असंभव था। क्या मधुकर स्वार्थी और क्रूर पति है ? ईर्षालु और द्वेषी है ? अथवा इस रूपवती युवती स्त्री पर किसी की दृष्टि न पड़े इसलिये इसने घर सभी के लिये बन्द कर रक्खा है ? मैंने फिर द्वार पर धक्का दिया, बाहर की कड़ी खटखटाई, आवाज दी, परन्तु द्वार नहीं खुला।

कदाचित उसी स्त्री के कथनानुसार वह बाहर किसी दूसरे ग्राम में गया हो तो ? गाँव का नाम भी तो उसने लिया था। जाते-आते ठीक ठीक तीन दिन बीत जाये ऐसा असम्भव था। भावताव तथा वायदे का सौदा किसी मित्र को भी सौंपा जा सकता है। विचार आते ही उस पर तुरन्त अमल करना यह हम लोगों का स्वभाव ही है। अभी इस समय गाड़ी के जाने में दो घण्टे की देर थी। मधुकर वहाँ पहुँच गया होगा। छोटा गाँव है इससे उसे ढूँढ़ने में विलम्ब नहीं होगा। आवश्यक बातों को समझा मैं गाड़ी में जा बैठा। कोई परिचित नहीं मिला। इस यात्रा में मधुकर से भेंट होगी अथवा नहीं इस विषय में शर्त करने की हमारी तीव्र इच्छा संतोष न पा सकी।

❀ ❀ ❀ ❀

तीसरे पहर गाड़ी ने मुझे निश्चय स्थान पर पहुँचाया। इस गाँव में मधुकर किसलिये आया होगा? मेरी धारणा के अनुसार यह छोटा गाँव न था। इस मनस्वी तथा बुद्धिमान मधुकर को यह गाँव आकर्षित कर सकता है यह मुझे नवीनता सी ज्ञात हुई। शहर की चमक-दमक यहाँ कुछ भी न थी परन्तु स्वच्छता और व्यवस्था के विचार से यह हिन्दुस्तान के अन्य गाँव की समानता में पृथक ही था। गांधी युग का दिग्दर्शन कराने वाली पोशाक की सादगी और स्वच्छता इस गाँव के आदर्श का जोरदार प्रचार कर रही थी। आँगन साफ सुथरे तथा कलापूर्ण स्वतिकायों से सजे हुए थे। बालकों के झुण्ड क्रीड़ा करते हुए घूम रहे थे। एक मन्दिर के निकट बड़े वट-वृक्ष के नीचे युवक एकत्रित हो किसी का भाषण सुन रहे थे। गाँव की बहुत सी स्त्रियाँ भी सम्मिलित दिखलाई दीं।

उतावली से आते हुए एक युवक से मैंने पूछा—'आज गाँव में कोई उत्सव है?'

'उत्सव?' हाँ, हाँ! यह क्या हो रहा है।' सहसा सकुचा कर युवक ने उत्तर दिया।

'किस बात का उत्सव है?'

'उत्सव? हाँ, हाँ, यहाँ एक मरण तिथि मनाई जा रही है।'

'मरण तिथि? किसकी?'

'तुम्हें नहीं मालूम?'

'नहीं भाई! मैं दूर से आ रहा हूँ और पहिली बार इस गाँव में आया हूँ।'

'किसके घर जाना है?'

'किसी के घर नहीं।'

'तब आये क्यों?'

'हमारा एक मित्र है उससे मिलने आया हूँ।'

'अच्छा, नाम क्या है ?'

'मधुकर !'

'वह तुम्हारा मित्र है।'

'हाँ !'

'और यह उत्सव किसका है तुम जानते नहीं ?' यह मैं नहीं मानता।' इतना कह वह आगे बढ़ा।

'परन्तु मुझे जरा यह तो बतलाओ कि मधुकर कहाँ है ?' मैंने पूछा।

'मधुकर यहाँ नहीं रहता। वह तीन वर्ष से चला गया है।'

'आज यहाँ आया है।'

'ऐसा है तो बिना पता लगे नहीं रहेगा।' इतना कह वह जल्दी से चला गया।

मैं भी बड़ के नीचे वाली भीड़ में घुस गया। साम्यवाद के विषय पर एक युवक भाषण दे रहा था। यह मुझे एक नई बात लगी। साम्यवादका प्रभाव गाँवमें भी पड़ने लगा। मधुकर कभी कभी साम्यवाद के विषय में कुछ न कुछ कह दिया करता था। एशिया से पुश्तैनी मिल्कियत छीन ली गई है और साम्यवाद द्वारा ही शासन व्यवस्था है।

मुझे साम्यवाद का अधिक ज्ञान न था। मुझे उसकी परवाह भी न थी। साम्यवाद में भी सट्टा किस प्रकार से हो सकता है इतना मैं जानता था। हमारा दृढ़ निश्चय हो गया था कि स्वर्ग में भी यह सट्टा खेला जा सकता है। फिर साम्यवाद का हिसाब ही क्या ? किन्तु हम लोगों की समझ में न आनेवाला प्रश्न इन गाँव वालों की चर्चा का विषय है यह मुझे एक आश्चर्य की बात लगी।

मैंने एक दूसरे मनुष्य से पूछा —

'मधुकर कहाँ मिलेगा?'

'मधुकर भाई? वह तो अब यहाँ नहीं रहते।'

'यहाँ आये हैं।'

'अगर आये हैं तो मिले बिना नहीं रहेंगे।'

'अगर मधुकर सचमुच ही न आया हो? किससे पूछूँ? मैं परदेशी हूँ यह सब समझते हैं। मेरी ओर सभी की दृष्टि पड़ती है। मैंने भीड़ में अन्दर घुसकर उस उत्सव को महत्ता समझा। मेरी समझ में आया कि तीन वर्ष पूर्व कोई आदर्श स्त्री का यहाँ स्वर्गवास हो गया है, उसी की आज मृत्यु तिथि है। आज की तिथि को गाँव वाले लोग नये ढङ्ग से जयन्ती मनाते हैं। इस स्त्री की मैंने अनेक विशेषतायें भाषण में सुनी। गाँव के प्राणी उसे देवी की मान्यता देते हैं। गांधी युग में कई देवियाँ नवीन हुईं, कई एक के सिंह गर्जे और कई एक चंडिकाओं ने खुले केशों अथवा बँधे हुए जुड़ों के साथ महिषासुर के मर्दन का खेल किया। मुझे ये देवियाँ सिंहों तथा चंडिकाओं के समक्ष अतिनिकट सी लगी। यह सभी वीराङ्गनायें देखते देखते बालक के झूलेकी गीत गाती हुई बैठ जायेंगी; यह जो मैंने भविष्यवाणी की थी वह अब मुझे सत्य दीख पड़ी। इससे इस स्त्री की मृत्यु तिथि मनाई जाने में मुझे कोई रस नहीं मिला। मैं वहाँ से लौट आने को प्रस्तुत हुआ। मधुकर को सब लोग पहिचानते थे किन्तु वह कहाँ है यह किसी ने भी नहीं कहा। मधुकर न मिले तो मैं उसी लौटती गाड़ी से लौट आना चाहता था।

एक कोने से एक वृद्ध मेरे निकट आया, और मुझसे पूछने लगा। 'मधुकर को खोजते हैं।'

'हाँ।'

'किसी से कहना नहीं। हमारे पीछे-पीछे चले आओ।'

मुझे थोड़ा आश्चर्य हुआ, किन्तु मैं उसके पीछे-पीछे चला गया। धूपमें मैं उसके साथ-साथ कई कोस निकल गया होऊँगा कि निर्जन स्मशान समान स्थानमें दूरसे एक तालाब दिखाई पड़ा।

'आपको सचमुच मधुकर भाई से काम है ?' मेरे साथी ने पूछा—

'उसके सिवा मैं अनजानी जगहमें क्यों आता ?' मैंने कहा।

'तो उस तालाब के किनारे जाइये।' इतना कह वह मनुष्य चला गया।

❀ ❀ ❀ ❀

अनजान तथा एकान्त स्थान में मैं आगे बढ़ा। शहर में रहने वालों का गाँव में जाना यह भी एक साहस का कार्य हो जाता है। शहर में आकर घबड़ाया हुआ फिरने वाला ग्रामीण शहर वालों के हास्य का विषय बन जाता है। गाँव में आने वाला शहरी भी उसी प्रकार ग्रामीणों के हास्य का भाजन बन बैठता है।

तालाब के ऊपर अशोक वृक्ष था। वृक्ष के नीचे छोटे-छोटे चौरे थे, चौरों के आगे तालाब के किनारे एक पेड़ की डाल पर चढ़ तालाब में पैर लटका कर बैठी एक मनुष्याकृति को मैंने देखा। यही मधुकर था।

मधुकर यहाँ क्या कर रहा है ? क्यों ऐसे बैठा है ? मेरे मन में प्रश्न उठा।

मैं चुपचाप उसके निकट गया। तालाब में खिले कमल के एक फूल को वह अनिमेष दृष्टि से देख रहा था।

मुझे स्मरण आया कि मधुकर को कमल के फूल का बहुत

ही अधिक शौक है। पागल सा दिखता फिर भी वह हाथ में अनेक बार कमल का फूल लेकर सट्टा बाजार में आया करता। गुलाब, चम्पा, बेला, चमेली लेकर घूमने वालों को हमने देखा है। परन्तु इस प्रकार कमल को लेकर घूमने वाला सिर्फ मधुकर ही अकेला था। हम लोग उसकी हँसी भी उड़ाते। कमल का इस प्रकार का पागलपन भरा शौक? क्यों वह इस फूल की ओर प्रातःकाल से देखता हुआ बैठा है?

मधुकर की तरफ मैं देख रहा था। परन्तु उसकी दृष्टि मेरी ओर न पड़ी। एकाएक उसकी आँखों से आँसुओं की धारा उमड़ पड़ी। मैं चौंक उठा। एकान्त में इस प्रकार भावुक हो आँखों से सागर की धारा बहाने वाला मधुकर, हमेशा दुःख के समय में भी हँसने वाला मधुकर; ये दोनों क्या पृथक-पृथक हैं? मैं उसका आँसू देख नहीं सका। सट्टा और भावनामें थोड़ा भी सामञ्जस्य नहीं है। अन्त में मैं पुकार ही उठा।

'मधुकर!'

मधुकर चौंक उठा। घूमकर वह मेरी ओर देखने लगा। उसने आँसू पोंछ लिये और फिर स्वाभाविक हँसी हँसकर बोला—

'सुधाकर! तुम कहाँ से? आओ।'

'मैं, मैं भी तुम्हारे ही पीछे-पीछे चला आया। गतवर्ष भी तुम तीन दिन कहाँ भाग गये थे। इस वर्ष मुझे यह जानना था कि तुम कहीं जाते हो।' मैंने उसके निकट जाकर कहा।

'मैं हर वर्ष यहीं आता हूँ। एक दिन और रात्रि यहीं रहता हूँ। और फिर अपने काम में लग जाता हूँ।'

'परन्तु यहाँ आने का कारण?'

'कारण इतना ही-की यह मेरा यात्रा धाम है।'

'यात्रा धाम ? और तुम्हारा ?' मधुकर एकदम नास्तिक था। हम सब शकुन, रमल, ज्योतिष सभी कुछ मानते थे। मधुकर को इसमें कुछ भी श्रद्धा न थी। वह तो अनेक बार ईश्वर के अस्तित्व से भी इनकार करता था।

'हाँ! वर्ष में तीन दिन भावुक बनता हूँ।' उसने कहा।

'और वह इस स्थान में ?

'इस स्थान में मन पवित्र से भी पवित्र है।' इतना कहते ही तुरन्त फिर उसकी आँखें आँसुओं से भर आईं। मधुकर की आँखों में आँसू देखना अथवा आश्चर्य देखना, दोनों बराबर है। मैं शान्त रहा। आगे कोई प्रश्न नहीं पूछा। थोड़ी देर बाद उसने कहा—

'मुझे तुमसे कुछ कहना है। परन्तु तुम यहाँ किस प्रकार आये ?'

'यह भी सट्टा है ?'

'हम, हमारी बहन, और गाँव के मुखिया के सिवा कोई भी यह नहीं जानता कि मैं यहाँ आया हूँ।'

मुझे यह स्थान बतलाने वाला गाँव का मुखिया था, यह मुझे अब ज्ञात हुआ। परन्तु मधुकर की बहिन कौन ?

'मेरी स्नेह लग्न में मान्यता थी। किन्तु मेरा विवाह हो चुका था, वह स्त्री मुझे पसन्द न थी।' मधुकर ने कहा।

'अपने यहाँ स्नेह लग्न कहाँ ? स्नेह करना ही है तो घर से बाहर जा कर देखो।' मैंने कहा।

'और मुझे मेरे घर में ही स्नेह मिला। मान्य हीन था इसलिये मुझे उसका अनुभव न हुआ। अब उस स्नेह को पाने में मैं असमर्थ हूँ।'

स्थल का वातावरण ऐसा था कि मुझसे उसकी हँसी नहीं

उड़ाई जा सकी। मेरी जिन्दगी में भावना और आँसू दोनों का स्थान नहीं है। किन्तु मुझे लगा कि मधुकर कोई अकथ्य मानसिक विचारोंमें बहा चला जा रहा है। उसका जीवन चरित्र जानने की मेरी इच्छा हुई।

'मैं आदर्शों में लीन रहता था। परन्तु मुझे लगा कि धर्मपत्नी मेरे आदर्श को बर्दाश्त कर सके, ऐसी नहीं है। वह बहुत ही शिथिल है तथा उसमें उत्साह नहीं है, ऐसा मुझे भास होता।'

'पत्नी कभी उत्तेजक नहीं होती ?' मैंने पूछा।

'ऐसा मानकर मैंने बहुत बड़ी गलती की। आर्थिक स्थिति थोड़ी अच्छी होने पर भी मैं देशोद्धार के कार्य में लगा था। गांधीजीका प्रभाव व्यापक था। मैंने भी इस गाँवमें आश्रम खोल रक्खा था। लोगों का पूर्ण सहयोग मिला और मैं इस गाँव को आदर्श गाँव बना सका।' फिर मधुकर की दृष्टि कमल की ओर गई। उसकी आँखे फिर तरल हो उठीं। उसने बातों का प्रसंग आगे चालू किया।

'किन्तु एक असन्तोष था। मेरा पत्नी कभी भी खुलकर प्रचार में निकली नहीं। न उससे गीत गाया जाय, न उससे जनता का नेतृत्व किया जाय। मैंने उसे कभी थोड़ा सा भी दुःख नहीं दिया था, इतना ही मेरे मनमें सन्तोष है। परन्तु मैं उससे कभी पूर्ण रूप से रीझा न था, इतना वह अच्छी तरह समझ गई थी। यह तीन वर्ष पहिले की बात हैं। मुझे दूसरे गाँव जाना था। हफ्तों वहाँ रहना था। ग्राम उद्धार की योजनानुसार मुझे दूसरे गाँव में थोड़ा कार्य प्रारम्भ करना था, इसलिये मेरा वहाँ उपस्थित रहना आवश्यक था। 'मैंने अपनी छोटी बच्ची को प्यार कर पत्नी से कहा।

'मैं आठ दिन में लौट आऊँगा।'

'अच्छा ! अपनी तबीयत का ख्याल रखना !' मेरी पत्नी ने कहा। वह कभी भी मेरे विचार अथवा योजना के विरुद्ध नहीं चलती थी। उसके स्वर में मुझे कम्पन सा लगा। मैंने उसकी ओर ध्यान पूर्वक देखा। वह हँस पड़ी। मैंने पूछा—

'कैसी तबीयत है ?'

'ठीक ही है।'

'बुखार तो नहीं है ?'

'थोड़ा हो भी तो क्या ? मौसम के बदलने से हो गया है। आप निश्चिन्त मन जाइये।'

मैं चला गया और सात दिन वहाँ रहा। सातवें दिन मुझे तार मिला कि मेरी पत्नी की बीमारी गम्भीर हो गई है। मैं तुरन्त वहाँ से लौटा। पत्नी का अनुभव इसके पहले मुझे कुछ भी ज्ञात नहीं हुआ था। परन्तु इसी क्षण से मुझे लगा कि वह तो हमारे जीवन का एक मुख्य भाग बन गई है। चौबीस घंटे में ही उसका स्थान न रहेगा, यह मैं कल्पना भी न कर सका। मुझे तो उसी क्षण लगा कि मैं उसे प्यार करता हूँ।

गाँवमें आने के साथ ही मैं अपने घर की ओर दौड़ा। पत्नी बिछौने के पास जाते ही उसने आँखें खोल मेरी ओर देखा। मैंने उसके सिरपर हाथ रक्खा। मेरे हाथपर उसने अपना हाथ रख दिया। फीकी हँसी हँसती हुई वह मुझे देखती रही।

किसी ने कहा, तब मुझे जान पड़ा कि वह महाप्रयाण कर चुकी है। उसके बाद की चर्चा तुमसे न करता। परन्तु उसके बाद की बातों में ही मैंने अपनी पत्नी का मूल्य समझा। मेरे जीवन के क्षण-क्षण को वह शान्त ढङ्गसे व्यवस्थित करती रही। इतना ही नहीं, उसने सम्पूर्ण गाँव के जीवन को ही अपने हाथ में ले लिया था।

एक मनुष्यने कहा—वह तो देवी थीं। मेरे और स्त्री में जो प्रेम हो गया, वह उन्हीं का प्रताप था।

दूसरे ने कहा—'उन्हें मैं कैसे भूलूँ? मेरी गरीबी में मेरी इतनी मदद न किया होता तो मेरा क्या होता?'

तीसरे ने कहा—'मेरी बच्ची को माता का प्रकोप हुआ था, कोई निकट बैठता न था। बहन के बिना मेरी बेटी कैसे बचती?'

चौथे मनुष्य की बातें सुनी—'उसके बदले में भगवान ने मुझे उठा लिया होता तो कितना अच्छा होता? व्यसन में फँसा हुआ, आज मैं घर बार वाला बना हूँ। उसके बिना यह सब कैसे होता? मेरे गाँव से योगमाया रूठ कर चली गई।'

'मैंने इस आश्रम से चोरी की और पकड़ा गया, किन्तु उन्होंने मुझे एक शब्द भी नहीं कहा और अपनी धनकी थैली मुझे दे दी। उस क्षण से मैं चोर से फिर मनुष्य बन गया। मेरे मन के बातों को इस जगदम्बा बिना कौन पूर्ण करेगा।' मुझे आश्वासन देने के लिये आये हुए व्यक्तियों में से एक ने रोते-रोते कहा।

'उस कारकून ने मुझसे रिश्वत माँगी थी और मेरे पास एक पाई भी न थी। मैं बहन के पास लेने आया था। उन्होंने मुझे रोका। तब से समूचे गाँव का घूस देना बन्द हो गया है। यह प्रथा उस देवी बिना कौन बन्द करता?' किसी ने मेरी स्त्री को स्मरण करते हुए कहा।

जहाँ पुरुष रो रहे थे, वहाँ स्त्रियों की कौन बात? कोई स्त्री उससे प्राप्त शिक्षा के गुण वर्णन कर रो रही थी, कोई वृद्धा अपनी अकर्मण्य पुत्रवधू के सुधारने की बातें कह रही थी, तो कोई स्त्री अपने राक्षस पति द्वारा नित्य शरीर की कुड़म्बस से

उसकी रक्षा तथा पति में देवत्व स्थापना कर स्नेही पति बनाये जाने की प्रशंसा कर रो रही थी और जब एक बालक ने हमारी पत्नी का उल्लेख कर अपनी माता से पूछा कि 'माँ अब बहन मुझे नहीं प्यार करेंगी?' उस समय इन बालकोंकी बहन, अपनी पत्नी के स्मरण से, आँखों में आँसू भर आये थे।

आँसू भरी आँखों से गाँव के प्रत्येक स्त्री, पुरुष मेरी पत्नी के उपकार का किसी न किसी प्रकार वर्णन कर रहे थे, उस समय मुझे संशय हो जाता था कि मेरे ग्रामसुधार की सफलता मेरी बुद्धि में थी अथवा मेरी स्त्री के हृदय में?

'क्यों मैंने उसे पहिचाना नहीं? भाषणकरता लोगोंको एकत्रित करता, संगीत सुनता, कोई भी कितना ही महत्वपूर्ण कार्य क्यों न करता होऊँ? ग्राम जीवन ने उसे यथार्थ मातृत्व जीवन समर्पण किया था। यह अब मैंने समझा। उसकी मृत्यु से मैं ही नहीं, समूचा गाँव रो उठा।

मेरे जीवन से उत्साह निकल गया। पत्नी की चिता के निकट आकर बैठा और उसमें से भस्म उठा ली। इसी तालाब के किनारे, इसी स्थान पर उसके शरीर का दाह संस्कार किया था। मेरे हाथ का थोड़ा भस्म पानी में गिर गया। पानी में गिरने के साथ ही एक कमल उत्पन्न हो मेरी ओर देखने लगा। मेरे पत्नी का क्या यह मुख नहीं है? नहीं, नहीं! कहाँ वह मुख? कहाँ यह कमल का मुख?

मेरी पत्नी ने कभी भाषण नहीं दिया था, परन्तु भाषण करने का साधन उसने मेरे लिये कितनी सरलता पूर्वक एकत्रित कर दिया था। मेरी पुस्तकें, कागजात, कलम, आदि सारी वस्तुयें कितने सुव्यवस्थित रूपसे वह रखती थी।

मेरे ऐसा कठोर, कर्कश, आकर्षित आवाजमें भाषण देनेवाला घमंडी, मगरूर देश सेवक और कहाँ वह मृदु भाषिणी, सरलता से पूर्ण, स्त्री पुरुषोंसे समान व्यवहार करने वाली मेरी पत्नी क्या मुझ से कम लोक सेवा कर रही थी ? चोर को, व्यसनी को मेरी डाँट ने सुधारा अथवा मेरी पत्नी की मीठी बोली ने ?

बड़ी-बड़ी योजनायें बना कर और बड़े-बड़े समूहों को एकत्र कर-अधिकारियों को गोरखधन्धे में डालकर जब मैं घर वापस आता, उस समय-मुझे असन्तोष होता कि मेरी स्त्री मेरे कार्य को समझ नहीं सकती। पुराने जमाने की पत्नी के समान वह मेरा माथा दबाती, पैर दबाती तथा अनेक प्रकार के आराम देती। रसोंई तैयार रखती, स्वच्छ बिछौने बिछा रखती, यह सब मुझे बहुत ही रुचता परन्तु...कभी भी वह एक भाषण दिये होती तो वह इन बातों से कहीं अधिक रुचती यह मैं मान बैठा था। उसकी मृत्यु ने मुझे समझाया कि वह तो पति के लिये, जिससे पति की प्रतिष्ठा बढ़ा करे ऐसी व्यवस्था करने के लिये पीछे पीछे सचेष्ट रहती थी।

परन्तु क्या वह सचमुच ही अकर्मण्य थी ? अब मुझे जान पड़ रहा है कि जो योजनायें बनाकर, जुलूस निकाल कर, अधिकारियोंको घबड़ाहटमें डालकर समर्थ नहीं हुआ वही उसने पीछे रह कर सिद्ध कर लिया। जुलूस निकालनेकी अपेक्षा चेचकसे पीड़ित बालक की सुश्रूषा करना क्या अधिक महान नहीं है ? कागज पर योजनायें बनाने की अपेक्षा सास बहू का झगड़ा मिटाना क्या कम कठिन कार्य है ? अधिकारियों के घूस देने के विरुद्ध लोगों में जागृति उत्पन्न करने की अपेक्षा एक श्रम जीवी को निर्भय बना कर घूस देने की प्रवृत्ति को निर्मूल करना क्या

अधिक आवश्यक नहीं है ?'

मैं श्रेष्ठ हूँ कि मेरी पत्नी ? यह एक भयङ्कर विचार मेरे मन में तूफान उठा देता है।

क्या उसने मेरे लिये अपना समूचा जीवन बलिदान नहीं कर दिया ?

इस विचार से आज तक मैं मुक्त न हो सका। मैंने अपने अभिमान में अपने पत्नी का बलिदान कर डाला। उसके स्नेह को मैं पहचान न सका। मेरे पापों की प्रतिध्वनि करने वाला यह गाँव, इसमें अब मुझसे कैसे रहा जाय ? मेरा मन उचट गया।

गाँव से मैं भाग गया। पत्नी के प्रति किये हुए अन्याय ने यहाँ मेरा रहना अशक्य बना दिया। फिर भी ग्राम निवासियों के साथ एकान्त में उसकी मृत्यु तिथि मनाता हूँ। सब से छिप कर मैं यहाँ आकर बैठता हूँ। यही स्थल मुझे अपने पत्नी के मुख की स्मृति ताजी कराती हैं। उसका मैं स्मरण करता हूँ और रुलाई आने पर रो लेता हूँ।'

❀ ❀ ❀ ❀

मधुकर की कहानी सुन मुझे दुःख हुआ। मधुकर का यह सम्पूर्ण इतिहास जैसे मेरे ही दृष्टि के समक्ष ही सम्पूर्ण हुआ हो, ऐसा मुझे लगा। कितनी बार मैंने उससे पूछा—

'परन्तु तुम सट्टे जैसे धन्धे में कहाँ से आ पड़े ?'

'मुझे मेरा जीवन अब निरर्थक लगता है। मुझे अब उसे मिटा डालना है। इस सट्टे में यह हो सकता है, यह सोच कर मैं इसमें पड़ा।'

'तुमने तो फिर विवाह किया होगा न ?' शहर में उसके घर देखी स्त्री का विचार हो आने के कारण मैंने पूछा। मधुकर ने

मुझे तीक्ष्ण दृष्टि से देखा। फिर हँस कर बोला—

'यह प्रश्न निरर्थक है। पुरुष दूसरा विवाह करे तो वह पापी है और न करे तो वह साधू है, ऐसा मानने का भी कोई कारण नहीं है। संयोग मनुष्य को गढ़ता है।'

मुझे लगा कि मैंने अनुचित प्रश्न किया। किन्तु हमारी जिज्ञासा अभी तृप्त न हुई थी। मैंने उससे कुछ देर बाद पूछा।

'मैं तुम्हारे घर गया था, वहाँ तुम्हारे इस गाँवमें आनेकी सूचना एक स्त्री ने दिया था। वह कौन है?'

मधुकर मेरे प्रश्न का अर्थ समझ गया। वह हँसा, और हँसते हुए बोला—

'तुम पहिचान नहीं सके? वह मेरी बहन—सगी बहन है। मेरी लड़की की देख-रेख करती है और पढ़ती है। मेरे और उसके मुख की तुम समानता भी नहीं देख सके।'

तत्काल ही मुझे जान पड़ा कि मधुकर और उसकी बहन तथा उसकी लड़की का मुख बहुत ही मिलता-जुलता है।'

'अब आगे क्या विचार है?' मैंने पूछा।

'कल शहर आकर तुरन्त अबीसीनियाँ चला जाऊँगा। मैंने शर्त बदी है न?'

'इस प्रकारकी कोई शर्त भी होती है? विपक्षीने तो स्वीकार नहीं किया है।'

'मैंने तो स्वीकार किया है। जो सट्टा करता हुआ युद्ध में जीवन का बलिदान हो जाये तो कितना अच्छा हो। इस प्रकार अब जिन्दगी बिताये नहीं बीतती।'

'जाओ, जाओ! कहीं जीवन इतना सस्ता पड़ा है?'

'जीवन सस्ता पड़ा है, इस लिये नहीं। परन्तु पत्नी बिना जीवन असह्य हो गया है इसलिये।' मधुकर ने कहा।

'उसकी स्मृति, तो तुम्हारे मन में बनी हुई है।' मैंने उसके विरह को शान्त करने के विचार से कहा।

'मुझे एक श्रद्धा है! मैं नास्तिक हूँ तो भी।' गम्भीरता से मधुकर ने कहा।

'कैसा ?'

'प्रकृति प्रेम सरीखे व्यक्तिगत भावों को विकसाती है। व्यक्ति और यह प्रेम देहके साथ ही नष्ट हो जाय तो यह कितना बुरा मालूम हो ?' मैंने समझाया।

शरीर से पृथक होने पर यह प्रेम जीता रह सकता है कि नहीं ? प्रकृति यह शरीर भले ही ले ले, परन्तु इस शरीरमें विकसित हुए प्रेमको नहीं ही ले सकती है। उसे व्यक्त करना, प्रेमियों को मिलाना, मृत्यु के पश्चात् कई साधनों को प्रकृति ने एकत्रित कर रक्खा है।

मैंने कुछ कहा नहीं। जीवन अथवा प्रकृति के विषय में मैंने कभी भी चर्चा नहीं की थी। मेरी चर्चा का विषय एकमात्र सट्टा था। मधुकर इस पागलपन में कहीं आत्महत्या न कर ले इतना सतर्क रहना मेरा कर्तव्य था। उसको अकेला ही छोड़ मैं तालाब के किनारे टहलने लगा।

रात्रि समय हम दोनों साथ ही लौटे। गाड़ी में मधुकर आराम से सोया था। उसे स्टेशन से घर पहुँचाने मैं साथ ही गया। उसकी बहन ने द्वार खोला। घरमें जाते समय मधुकर ने हँस कर मुझसे कहा—

'देखो सुधाकर! यह मेरी बहन है। ध्यानपूर्वक देखकर निश्चय करो कि मेरा तथा बहनका मुख मिलता है कि नहीं?'

'मैं लज्जित हो उठा, कोई उत्तर दिये बिना घर लौट कर सो गया।

प्रातःकाल मधुकर की आवाज सुन मैं जाग उठा। वह मुझे झकझोर कर उठा रहा था—

'अरे अभी ही ? क्या जरा सोयें भी नहीं ?' मैंने पूछा।

'आज जाना है न ?' मधुकर ने हँसते हुए कहा।'

'कहाँ ?'

'अबीसीनियाँ।'

'मालूम होता है कि तुम पागल हो गये हो, तुम्हें कौन जाने देगा ?'

'यह मैं तुम्हें बता देता हूँ। चलो, जल्दी से चाय पी लो।'

हम दोनों ने एक साथ चाय पी। मैं आश्चर्य-विमूढ़ बन गया था।

मधुकर सरीखा विचित्र मनुष्य न जाने कैसी योजना प्रस्तुत कर सचमुच जा रहा है, उसका जाना मुझे निश्चित मालूम हुआ। मोटर से हम दोनों साथ चले और एक मैदान में आये। मोटर खड़ी की और हम दोनों उतर पड़े।

'अब मैं तुम्हें समझाता हूँ कि मैं अबीसीनियाँ किस प्रकार जा सकता हूँ देखो, वह क्या है ?'

'यह तो हवाई जहाज मालूम होता है।' मैने आश्चर्य चकित हो कहा।

'यह मेरा है और इसे उड़ाना भी मुझे आ गया है।'

'तुम्हारे पास आज्ञा पत्र है ?'

'हाँ ! हवाई जहाज रखने और चलाने दोनों का। ऊँचे उड़-कर इच्छानुसार मैं चाहे जहाँ जा सकता हूँ।'

'परन्तु तुम्हें बहिन है, लड़की है, इनका क्या करोगे ?' मैंने उसे विचलित करने के लिए कहा।

'उन्हीं के लिये तो मैं सट्टा में पड़ा। पैसा खूब पैदा किया।

उसी से हवाई जहाज भी खरीद सका, और बहन तथा लड़की के लिये अलग धन भी रख सका।

'परन्तु सिर्फ पैसे से ही उनकी देखभाल हो जायगी ? तुम रुक जाओ, जाओ नहीं।'

'यह कागजात मैं तुम्हें सौंपता हूँ। तुम सच्ची मित्रता निभा सकोगे, ऐसा मुझे विश्वास है। आवश्यकता पड़ने पर सहायता करना। हम क्यों रुकें ? अब इस दुनियाँ में मेरा कौन है ?'

मेरा मन चिड़चिड़ा उठा। मधुकर की विदेश यात्रा से मुझे दुःख हो रहा था। मैंने उससे कहा—

'मधुकर, यह तो आत्म हत्या के समान है।'

'नहीं ! मैं अपने हाथों हत्या करूँगा, ऐसा ख्याल मत करो। अपनी पत्नी से इतना तो अवश्य सीखा है कि मरना हो तो किसी आदर्श पर और वह भी बहादुरी से। आज दिन भी मरने के लिये एक ही आदर्श है, वह यह है कि गोरों की चम-कती बेड़ियों से कालों को बन्धन मुक्त करना। यह ही एक स्थल प्राण विसर्जन योग्य है। वह हबशी देश में जाकर मरने पर आसानी से मिल सकता है।

'परन्तु समझो कि तुम जीते रहे तब ?' मैं अब भी दलील पेश कर उसे रोकने का प्रयत्न करने लगा।

'तो...तो...यात्रा निमित्त लौटूँगा ही।'

'कौन सी यात्रा ?'

'उसी श्मशान की—जहाँ मेरे पत्नी की स्मृति आज तक जीती है, उस स्थान की।'

उसके हाथ में कमल का फूल था। उसने उसकी पंखड़ियाँ तोड़ भूमि पर बिखेर दिया।'

'तुम बहुत ही क्रूर हो।'

'क्यों ?'

'इस बेचारे कमल को तुमने तोड़ डाला।'

'सुधाकर ! मेरी पत्नी का क्या नाम था तुम जानते हो ?'

'नहीं !'

'उसका नाम भी कमल था। मैं कमल के फूल का दीवाना क्यों था सो आज तुमने समझा होगा ?'

मेरी दृष्टिके निकट एक सुन्दर युवती की मूर्ति प्रगट होउठी। मैं गम्भीर विचार में पड़ गया। मुझे लगा कि मैं मधुकर के कमल को ही देख रहा हूँ। मुझसे कुछ बोला नहीं गया।

'यह नाम मुझे इतना प्रिय लगा कि उसी दिन से चौबीसों घंटे कमल का फूल अपने पास रखता हूँ।' मधुकर ने कहा।

'परन्तु तुम तो पंखड़ी तोड़े डालते हो।'

'जो मैंने अपनी कमल का किया वही इस नामधारी कमल का भी कर रहा हूँ और इसी प्रकार शरीर की नसें इन पंखड़ियों की तरह जब तक टूट न जावेंगी तब तक उस कमल से मिल न पायेंगी।'

आवेश और उग्रता पूर्वक वह हवाई जहाज की ओर देख रहा था।

'चलो मैं तुम्हें पहुँचा आऊँ।' कहकर उसने मेरा हाथ पकड़ कर मुझे मोटर तक जबरदस्ती पहुँचाया और इस प्रकार हम दोनों अपने अपने स्थान लौट गये।

परन्तु दिन निकलने पर हमारे सट्टा बाजार के ऊपर से एक हवाई जहाज उड़ कर जाते हुए सब लोगों ने देखा। जहाज बहुत नीचे उतर आया था और उसमें से एक मनुष्य मेरी तरफ रुमाल हिलाता हुआ दिखलाई दिया। मैंने सबसे कहा—

'मधुकर अबीसीनियाँ जा रहा है।'

'सब हँस पड़े। और 'हम क्यों रुकें?' यह वाक्य सभी के ज़बान पर था। कमल नाम उच्चारण करते समय मधुकर के मुख पर आये हुए भाव मेरी आँखों के आगे से पृथक नहीं हुए। बारम्बार एक ही प्रश्न पीड़ा दे रहा था।

सत्य क्या? भावना अथवा मूर्ति? मूर्ति मिटने के पश्चात् भावना जीवित रहती है, यह भावना क्या दूसरा अवतार नहीं दे सकती है?